गंगा-पुस्तकमाला का एकसौ सोलहवाँ पुष्प

भाई

लेखक
श्रीऋषभचरण जैन

प्रकाशक
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
प्रकाशक और विक्रेता
लखनऊ
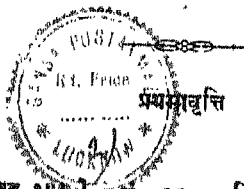
प्रथमावृत्ति

सजिल्द १।)] सं० १९८७ वि० [सादी १)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

दो शब्द

श्रीऋषभचरणजी जैन हिंदी-उपन्यास-जगत् के एक सुंदर रत्न हैं। उनकी रचनाएँ—कहानियाँ और उपन्यास—उच्च कोटि की होती हैं, इसीलिये हमें पसंद भी आती हैं। देखें, उनका "भाई" लोगों को कितना और कैसा पसंद आता है।

बसंत पंचमी, १९८७ } दुलारेलाल भार्गव

भाई
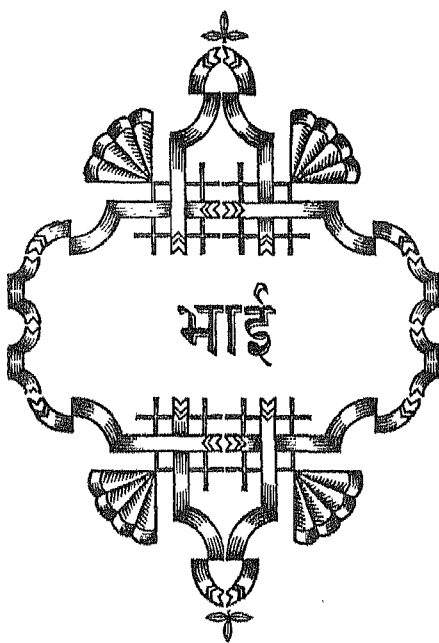
उपक्रमणिका

चैत की सुबह थी। दो बालक थे, कोई सात-सात बरस के। एक दूसरे का हाथ पकड़े, किलकारी मारते, उछलते-कूदते मधुपुर-गाँव के बाहर की ओर दौड़ते चले जा रहे थे।

गाँव से कोई पौन मील दूर एक कुआँ था, और उसके पास ही कच्ची दीवारों पर छाई हुई एक झोपड़ी। झोपड़ी खाली थी।

दोनों बालक झोपड़ी में पहुँचे। जाकर बैठ गए। तब एक ने कोने में पड़ा हुआ कुछ फूस उठाया। कीचड़-मिट्टी के कुछ कच्चे खिलौने वहाँ पड़े थे। बालक ने उन्हें देखा, और हँसते हुए कहा—"सूख तो गए।"

दूसरा बालक, जो बैठा था, बोला—"मैंने कहा न था!"

पहले बालक ने खिलौने लाकर रख दिए, और साथी की बात सुनकर बोला—"अभी बिल्कुल तो सूखे नहीं ; ज़रा कच्चे हैं। फूस न डालते, तो अब तक ज़रूर सूख जाते।"

दूसरे बालक ने अपनी बात कटती देख, तुनक-कर कहा—"फूस न डालते, तो ग़ायब ही हो गए होते, ऐसे भी न मिलते !"

पहले ने उपेक्षा से कहा—"पागल है ! कौन इनकी चोरी करने यहाँ आता ? झोपड़ी में खुले रक्खे रहते !"

"हूँ ! देखो," दूसरे ने नाराज़ होकर तर्क किया—"चुन्नी चरवाहे का लड़का यहाँ रोज़ ही आता है, वही ले लेता। या कोई ढोर हो झोपड़ी में घुसकर इन्हें तोड़ डालता। या रात को बिल्ली आ जाती, और इन पर हग जाती, तो...... ।"

"उल्लू है !" पहले ने साथी की बात काटकर कहा—"रोज़ तो बिल्ली आती नहीं, आज तेरे खिलौनों की गंध पाकर ज़रूर आती। रोज़ तो

ढोर इधर आते नहीं, आज इन ससुरे खिलौनों को तोड़ने जरूर आते। चुन्नी चरवाहे का लड़का......"

अपने लिये 'उल्लू' सुनकर दूसरा बालक बड़ा क्रुद्ध हुआ, और क्रमशः अपने सभी तर्कों को कटता देखकर तो उससे क़तई ज़ब्त न हो सका। बोला—"जो खुद उल्लू-गधे होते हैं, वही दूसरों को ऐसा समझते हैं। मुझे......"

दोनों बालक समवयस्क-से थे, परंतु पहला दूसरे से अधिक बलवान् और स्वस्थ नजर आता था। उसे भी अपने अधिक बल का ज्ञान था। उसके निडर और दबंग स्वभाव से यह सहज में अनुमान किया जा सकता था। पहला बालक दूसरे पर अपना कुछ अधिकार-सा समझता था, और जो शब्द वह साथी के लिये इस्तेमाल करता था, वही उसके मुँह से अपने लिये सुनकर वह चुप रह जाना जरूरी नहीं समझता था। अतः उसने उसे चिढ़ाना शुरू किया—"सिंबू (सिंभू), खावै निंबू! सिंबू, खावै निंबू!!"

दूसरा बालक (सिंभू) अपनी चिढ़ सुनकर पहले रोकर या लड़कर, या गाली देकर उसका प्रतिवाद करने को हुआ, पर फिर सँभलकर एक नवीन आविष्कृत चिढ़ द्वारा साथी को चिढ़ाने लगा—"रामसनेही टुइयाँ, खावै घुइयाँ ! रामसनेही टुइयाँ, खावै घुइयाँ !!"

रामसनेही ने नीति से काम लिया और कहा—"हम चिढ़ते ही नहीं, हम चिढ़ते ही नहीं। सिंबू, खावै निंबू ! सिंबू, खावै निंबू ! सिंबू...... !"

सिंभू ने और एक-दो बार अपना मंत्र पढ़ा, पर रामसनेही को बराबर झूम-झूमकर "सिंबू, खावै निंबू !" जपते हुए देखकर उसका रोष, रुदन बनकर, फूट निकला, और वह रेत में लोटकर रोता हुआ कहने लगा—"साला, बदमाश, रामसनेही...मर जाना !"

"हैं ! गाली !" रामसनेही ने डाटा, और अपने बड़प्पन का पूरा परिचय देने के लिये उसने सिंभू के गाल पर एक थप्पड़ जड़ दिया।

थप्पड़ खाकर सिंभू का रुदन तीव्रतर हो उठा। उसने अपनी और रामसनेही की शक्ति का मुक़ाबला किए बग़ैर थप्पड़ मारनेवाले पर हमला कर दिया और अंधा-धुंध लात-घूँसा चलाने लगा। रोना और बकना बराबर जारी था।

रामसनेही ने सिंभू के हमले की शायद कुछ भी पर्वाह न की। सबसे पहले उसने खिलौनों को बचाने की फ़िक्र की, और सिंभू के दोनों हाथ पकड़कर पीछे हटाते हुए ले जाकर कोने में फूस पर ढकेल दिया।

तब वह उसे छोड़कर खिलौनों के पास आ गया।

सिंभू जानता था—उठकर लड़ने गया, तो बुरी तरह पिटूँगा, अतएव उसने वहीं पड़े रहने में कल्याण समझा, और पड़े-पड़े रुदन के साथ-साथ ही बक-बक करता रहा।

रामसनेही बैठा-बैठा कुछ देर उसकी तरफ़ देखता रहा, फिर बड़प्पन के भाव से स्नेह-सिक्त स्वर में बोला—"हाँ तो, पचास दफ़े समझाया—गाली

बकनी अच्छी नहीं, फिर भी नहीं मानता। पता नहीं, किसने इतनी गालियाँ सिखा दीं!"

सिंभू ने ध्यान से रामसनेही की बात सुनी, पर रुदन में अंतर न डाला।

रामसनेही सिंभू की आदत जानता था। उसने कीचड़ के खिलौनों का निरीक्षण शुरू किया। चार छोटे-छोटे पहिए थे, और दो छोटी-छोटी लंबोतरी, परंतु अपेक्षा-कृत मोटी, ईंटें-सी थीं, जिनके बीचो-बीच छेद था। असल में यह गाड़ी बनाने का सामान था। अभी गाड़ी पूरी करने के लिये सरकंडों की जरूरत थी। रामसनेही ने सिंभू से—जिसका स्वर मद्धिम होता जा रहा था—कहा—"सिंभू! चल, सरकंडे ला, उठ जल्दी!"

रुदन की स्वर-वृद्धि और कोई अस्पष्ट गाली।

रामसनेही ने प्रेम-भरी कठोरता से कहा—"उठा नहीं?"

पहले मौन, फिर रीं-रीं!

"उठ, नहीं मैं ही सरकंडे लाता हूँ।"

परंतु सिंभू ने खेल में शामिल होने का लोभ त्याग दिया, और न उठा। हारकर रामसनेही ही उठा, पर गाड़ी का मिट्टी का सामान उसने कुर्ते में भरकर साथ ले लिया। कहीं गुस्सैल सिंभू उसे तोड़-फोड़ न दे।

रामसनेही के जाते ही सिंभू का रोना रुक गया। उसने धीरे से आँख खोलकर देखा—झोपड़ी में कोई न था। एक बार उसके जी में आया कि क्यों आज का खेल खोऊँ? उठकर रामसनेही के पीछे भाग चलूँ। पर शर्मिंदगी! अपमान! रामसनेही हँसी उड़ाएगा? कहेगा नहीं, तो मन-ही-मन तो जरूर ही हँसेगा।

तर्क-वितर्क करके उसने निश्चय किया कि सरकंडे लेकर रामसनेही आएगा और उससे खेल में शामिल होने को कहेगा, तो वह और मान न करेगा, और शामिल हो जायगा।

वह फूस पर पड़ा-पड़ा ही रामसनेही का इंतजार करने लगा।

पड़े-पड़े कब नींद आ गई, इसका उसे पता नहीं !

× × ×

आध घंटे बाद रामसनेही हरी मूँज की बेढंगी रस्सी गाड़ी में बाँधे, रस्सी खींचता हुआ झोपड़ी में आया। गाड़ी की तरफ़ बड़े चाव से देखता हुआ वह सिंभू को सुनाने के लिये आप-ही-आप कहने लगा—"हमने गाड़ी भी तैयार कर ली, और कोई आदमी रो ही रहा है। बस, अब मैं तो घर जाता हूँ, कोई चाहे यहाँ पड़ा-पड़ा रोवे या झीखे।.........और, जो कहीं पीछे से बिल्ली ने आकर हग दिया, तो......"

रामसनेही यह कहता-कहता खिलखिलाकर हँस पड़ा, और हँसते हुए उसने सिंभू की तरफ़ देखा।

पर सिंभू पर इसका कुछ असर न हुआ। वह चुपचाप पड़ा रहा। रामसनेही उठकर उसकी तरफ़ गया और आवाज़ दी—"सिंभू!" पर सिंभू बे-खबर सो रहा था।

गाड़ी बनाने में रामसनेही को काफ़ी परिश्रम करना पड़ा था। सिंभू को सोता हुआ देखकर उसके

शरीर में भी आलस्य पैदा हुआ, और उसने छोटे-छोटे हाथ उठाकर, पतले-पतले होंठ खोलकर अँगड़ाई और जमुहाई ली, सिंभू के विषाद-युक्त मुँह को बड़े प्रेम-भाव से देखा और तब उसके गले में हाथ डाल-कर, छाती-से-छाती भिड़ाकर सो रहा।

कैसा स्वर्गीय स्नेह था!

(१)

पिछली उपक्रमणिका के ठीक उन्नीस बरस बाद एक दिन तीसरे पहर को मधुपुर-गाँव में बड़ा हो-हल्ला मचा। मर्द सब खेतों पर गए हुए थे। औरतों की जो बातें हमने सुनीं, ज्यों-की-त्यों उद्धृत करते हैं—

"......पर कुछ भी हो, रामसनेही को सिंभू की बहू पर हाथ उठाना लाजिम नहीं था; औरतों के झगड़े से मर्दों का क्या काम?"

"बीबी, अनीती तो इस सरूपी ने भी कम नहीं उठाई है। ऐसी कड़कड़ा-कड़कड़ाकर कोसती है कि सुननेवालों तक का कलेजा थर्रा उठता है। वह तो विचारी रामसनेही की बहू ही है, जो सह लेती......"

"कौन, दुर्गा?"

"हाँ।"

"अजी राम का नाम लो। तुम क्या जानो; मैंने

जमाना देखा है। ऐसी हर्रीफ औरत दुनिया के पर्दे पर ढूँढे नहीं मिले। बिना उसके सिखाए खसम की ताब थी, जो पराई स्त्री पर हाथ उठा बैठता ?"

"......हाँ, होगी; किसी के मन की कौन जाने !"

"सब जानी-जूनी है। सौ सुनार को से एक लुहार की ज्यादा होती है। उसने मुँह से सौ दफे बक-बक की, तो उसने एक बार ही बिचारी को पिटवा दिया। उसका पीठ-पीछा है, पर राम-लगती कही जाती है, सरूपी चाहे जितना बक ले, पेट की काली नहीं है; और इस दुर्गा की......अजी बस, इसके पेट की तो राम ही जानता है !"

"......सचमुच, बात तो यही है। दुर्गा की वाह-वा तो जब होती कि रामसनेही का हाथ पकड़ लेती, और सरूपी को बचा देती। अपने सामने-सामने जिठानी को पिटवा दिया......यह तो तारीफ की बात नहीं है।"

"औ—र; यह तो है ही !!"

× × ×

"बात क्या हुई चाची ?—तुझे पता है कुछ ?"

"अरी बात क्या हुई, यह है न सिंभू की बिगड़ैल ; सरूपी पहुँच गई आज सबेरे-ही-सबेरे बिचारी दुर्गा के घर में। संजोग की बात, आज रामसनेही घर में ही था। दुर्गा तो सुन लेती थी; वह आखर मरद की जात ; आ गया गुस्सा। थोड़ी देर तो सुनता रहा, जब न सही गई, तो सामने की खीर-भरी थाली उठाकर मुँह पर फेक मारी ; सुसरी का सारा मुँह जल गया, और भागी वहाँ से 'बाप ! बाप !!' करती। मार के आगे तो भूत नाचते हैं न ? सारा नसा उतर गया। अब पड़ी है, सूखे चून में मुँह छिपाए । भला कोई कहाँ तक सुने ? हरामजादी, बिगड़ैल ! अब आ गई होगी अकल ठिकाने !"

"पर चाची, रामसनेही को दूसरे की औरत पर हाथ उठाना लाजिम था ? लुगाई-लुगाई आपस में लड़ें या मरें ; मर्द को बोलने का........."

"अरी कोई बात है ! उसने तो दोनो हाथ

पसार-पसारकर रामसनेही को कोसना सुरू कर दिया था। आखर कोई कहाँ तक सुने ! दुर्गा कोई सरूपी की दुवैल नहीं, रामसनेही सिंभू का नहीं। धनवाले की बेटी है, तो किसी पर एहसान थोड़ा ही है........"

"पर चाची, दुर्गा की कोई तारीफ तो रही नहीं...।"

"कैसे ?"

"उसने अपने सामने-सामने जिठानी को पिटने दिया, और कुछ नहीं बोली।"

"वाह ! पीटने को क्या किसी ने उसके लट्ठ मारे थे। गुस्से में आकर खीर की थाली फेंक दी, उसे वह बीच ही में कैसे रोक लेती ? बहुतेरे तो हाथ जोड़े—'बीबी, इस बखत जाओ ; क्यों फजूल झगड़ा बढ़ाती हो ; साईं-सूती रोटी निमट जाने दो।' पर वह तो लंका बनकर आई थी। वह किसकी सुनती ?"

"मैंने तो सुना है, रामसनेही ने सिंभू की बहू को लकड़ियों से पीटा है। यह क्या गलत है ?"

"राम ! राम ! लो बोलो, तिल का ताड़ बन गया !"

"तो यह क्या झूठ है ?"

"और क्या सच है ? एक मिनट तो वह वहाँ ठहरी नहीं। खीर ने मुँह जलाया, और वह भागी ; लकड़ी से कैसे पीट देता ?"

"ठीक है।"

× × ×

"हूँ ! कैसी घुन्नी साँपन है ! घर बुलाकर बिचारी को पिटवा दिया ! देखना, क्या होता है ? साँझ को सिंभू सहर से लौटकर जोरू-खसम को इसका मजा चखा देगा। वाह, अच्छी रही ; एक इसी के खसम की देह में तो बल है ; और तो सब चून के पुतले हैं ! हुँः !!"

"अरी किस पै बिगड़ रही है रामो ?"

"आओ जिठानीजी, उसी चुड़ैल दुर्गा की बात है; कैसा कुकर्म किया है। घर में बुला के उस बिचारी सरूपी को पिटवाया ! अरी कुछ तो लिहाज-सरम रखती; और नहीं, तो जिठानी के रिस्ते की ही......"

"अरी तू बावली हुई है रामो, दुर्गा बिचारी का

क्या खोट ? अनरथ की जड़ तो यह सरूपी ही है। इतने दिन से तू देख रही है, रोज इनके घर में लड़ाई होती है; किसी दिन दुर्गा की आवाज भी सुनी ?"

"वाह जिठानीजी, तुम्हें क्या पता ? सारे बिस के बीज तो इसी दुर्गा के बोए हुए हैं; इसके पेट में दाढ़ीवाला खेलता है!......हूँ! मरद से जिठानी को पिटवा दिया!—कलजुग है, कलजुग यह!...खैर, उसका भी तो मरद है, अब लौटकर आ जाता है, सहर से; फिर देखूँगी, कहाँ जाती है। इस रम-सनेहिया की बहादुरी; थाने-पुलुस में न दोनो की टुंडी घिसटैं, तो नाम बदल देना।"

"वाह! अच्छी हिमायतन बनी है। उसका खोट भी देखा ? आदमी के सुन्ने का भी हद होती है। वह अमीर की बेटी है, तो बाप का धन किसी को बाँट थोड़ा ही देती है ? न कोई उसकी खैरात खाता है, फिर कोई क्यों किसी की सुने ? और, इस दुर्गा बिचारी ने ता उस बखत भी भतेरे (बहुतेरे)

हाथ जोड़े—'जिठानीजी, चली जाओ ; रोटियों में बिघन मत डालो, मत डालो।' पर वह कैसे मानती, उसके सिर पै तो आज सनिच्चर खेल रहा था !... भला आपस में लड़े तो लड़े, मरदों के सामने तो उजग्गर न हो। और, ऊपर से तू उसकी तारीफ ?......"

"तुम्हें मालूम क्या है जी, मरदों को औरतों के बीच में दखल देना ही नहीं चाहिए। मेरे दादा की दो बहुएँ थीं, दोनों आपस में लड़तीं, तो आप बाहर निकल जाते। यह है मरदों का फरज ! यह थोड़ा ही कि जरा-सी बात सुनी और दूसरे की औरत पर हाथ चला बैठे। यह भी कोई हँसी-खेल समझा है ? आने दो, सिभू को, इस रमसनेहिया ने ना दस बरस चक्की पीसी, तो मेरा नाम नहीं।"

"चक्की पिसवाना भी कोई साधारन बात है। जज्ज-बलिस्टर भी तो कानून से लड़ते हैं। अँगरेजी-सरकार है ; कोई अंधेर है ! सारा गाँव रामसनेही की तरफ है। तेरी-जैसी चुड़ैलों के कहे का..."

"बस, जीभ रोकके बात कर ! चुड़ैल तू होगी ! मैं तो जिठानी-जिठानी करती हार गई, आप चुड़ैल-चुड़ैल करने लगीं। सारा गाँव तेरी तरह दुर्गा के टुकड़े थोड़ा ही तोड़ता है, जो उसकी तरफ हो जायगा। घबरा मत, तुझे भी जेल की ...."

"सुसरी के कल्ले चीर दूँगो, ज्यादा बकवाद करेगी तो ! लो बोलो, हमारे सामने ब्याही आई, और हमारे साथ ही जबानदराजी करती है। सुसरी बदमास कहीं की !"

"सुसरी, बदमास तू है कि मैं !—गुलाबदास बाबाजी की बात क्या मुझे मालूम नहीं है। जा चली जा, नहीं सब पड़ते खोल दूँगो।"

"अरे मेरी तौक ! ठहर तो, तुझे ठीक बनाऊँ !"

"आ, लुच्ची बेहया, आ, तेरी बदमासी झाड़ूँ !"

गुत्थम-गुत्था, मार-पिटाई, हाहा-हूहू, और एक नई लड़ाई का सूत्र-पात !

× × ×

सिंभू पहर रात गए लौटा। घर का द्वार खुला पड़ा था। धक् से रह गया! आज क्या हुआ? बहू से थर-थर काँपता था। कहीं ज़हर खाकर तो नहीं सो गई? क्या हुआ? क्या हुआ?

धीरे-धीरे घर में घुसा। दिया-बाती कुछ नहीं, सर्वत्र अंधकार। एक बार डरा, फिर जी कड़ा करके खड़ा रहा। आवाज़ दी—"मनोहर!"

मनोहर उसके तीन बरस के बच्चे का नाम था। कोठे में से हल्की-हल्की सिसक सुनाई दी। सिंभू ने पहचाना—सरूपी...!

अरे!!

सिंभू ने धीरे-धीरे कोठे के दर्वाजे को छुआ। किवाड़ खुले थे। ठेलकर भीतर घुसा।

सरूपी ने पति की आवाज़ सुनी थी। कटोरदान में सूखा आटा भरे, वह उसमें अपना जला मुँह छिपाए पड़ी थी, वैसे ही पड़ी रही। न हिली, न डुली; हाँ, ज़रा आवाज़ ऊँची कर दी।

सिंभू ने कमर का बोझा उतारकर रक्खा, माथे

का पसीना पोंछा, और आशंका से हृदय भरकर, बड़े चिंतित भाव से स्त्री की ओर चला।

पास जाकर पुकारा—"मनोहर की मा !"

सिसक और हिचकी; और कोई उत्तर नहीं।

सिंभू ने सरूपी के कंधे पर हाथ रखकर कहा—"क्या हुआ ?"

फिर मौन !

"मनोहर की मा ! मनोहर की मा !!"

"हूँ।"

"क्या हुआ ? ऐसे क्यों......?"

अब की बार मनोहर की मा ने कटोरदान में से मुँह निकाला—"हुआ तुम्हारा सिर ! अब की बार मेरी जान पर बीतेगी !!"

सरूपी यह कहकर खुलकर रोने लगी।

"आखिर—" ग़रीब सिंभू ने अपने खिन्न हृदय को सँभालकर पूछा—"बात क्या हुई ? कुछ साफ़ तो कहो।"

सरूपी का रोना ख़त्म न हुआ।

सिंभू का धीरज छूट गया। रोज़ की लड़ाई ने उसका हृदय पका दिया था। शहर की बीस कोस की मंज़िल से उसे जितनी थकान या तकलीफ़ हुई थी, उससे कई गुनी अधिक इस नए पचड़े को देखकर हुई, जिसका परिणाम पता नहीं क्या होना था। और, जिसे सुलझाने में पता नहीं उसे कितनी परेशानी का सामना करना था। सरूपी के असामयिक मौन से वह भूखा-प्यासा ग़रीब जल्दी ही घबरा उठा, और स्त्री की अधिक ख़ुशामद या दिलजोई करने में अशक्त हो, खाट पर बैठ गया। आँखों में आँसू आ गए और कहने लगा—"सरूपी, तुममें दया का लेश नहीं। बीस कोस से एक साँस चला आता हूँ। सुबह दस बजे दो पैसे के चने खाए थे। आशा थी, घर जाकर रोटी मिलेगी, थकान उतरेगी; पर मिला क्या मेरा खून चूसनेवाली एक नई राँड़!......हे भगवान्! इतने आदमी रोज मरते हैं; तुम मुझे भी क्यों नहीं बुलाते!!"

सिंभू यह कहकर आँसू पोछने लगा।

यह वह चोट थी, जो स्त्री के वज्र-हृदय को भी तिलमिला देती है। सरूपी अपनी तकलीफ़ को भूलकर उठ खड़ी हुई। दिया जलाया। तब सोते हुए बालक मनोहर को गोद में लेकर कहने लगी—"तुम्हें क्या मालूम! तुम्हारे लाड़ले भाई ने मेरी कैसी दुर्गत की है। सारा गाँव थू-थू कर रहा है। यह देखो—"

सरूपी ने कपड़ा हटाकर मुँह दिखाया।

सरूपी की तत्परता ने सिंभू का दुःख कुछ हल्का किया। सरूपी के मुँह पर कई छाले पड़े हुए थे। दुपट्टे से पैरों तक गर्द झाड़ता हुआ कहने लगा—"हूँ!...... यह कैसे हुआ?"

पति का भाव सरूपी को रुचा नहीं। तो भी कहने लगी—"बात यह थी कि आज मनोहर उस मर-जाने घनश्याम के साथ खेलता-खेलता वहाँ चला गया। जब लौटकर आया, तो मैंने देखा, इसके सिर के एक तरफ के थोड़े-से बाल किसी ने काट लिए हैं। मेरे बदन में आग लग गई। फिर भी मैं कलेजे पर पत्थर रखकर सहज-सुभाव पूछने गई। वह रमसनेहिया

भी वहीं बैठा था। मुझे देखते ही पतिंगे लग गए, और थाली उठाकर मेरे मुँह पर दे मारी। बताओ, मेरा पाँच हाथ का आदमी होते मैं पराए मर्दों की मार खा लूँ! धिक्कार है मुझे !!"

सरूपी के आँसू फिर दौड़ आए।

सिंभू कुछ देर चुप रहा, फिर कहने लगा—"इसमें कितना सच है, कितना झूठ ?"

"हाय !" सरूपी रोती हुई बोली—"तुम मेरी बात का बिसवास नहीं करते। मेरे दरोगा भाई की अरथी निकले, जो एक अच्छर भी झूठ हो। हाय मेरे राम !" सरूपी इस तरह चुप हो गई, मानो उसने अपने साहस से ऊँचा काम कर डाला हो।

सिंभू चुप। थोड़ी देर बाद बोला—"तुमने उसके घर जाकर सहल-सुभाव से बात की ?"

"......हाँ......।"

"...बिल्कुल सहल-सुभाव से......।"

सरूपी अपनी इतनी अधिक अविश्वस्तता न सह सकी। आँखें काढ़कर बोली—"और कैसे तुम्हें

बिसवास दिलाऊँ ? अपने राजा-से भाई की कसम खा ली, तो भी इतबार नहीं ! हाय मा ! तैने पैदा होते ही मुझे क्यों नहीं मार डाला ! अच्छे के हाथ सौंपा, जो अपनी औरत को पिटवाकर इस तरह चुप-चाप बैठा है ! धिक्कार है ऐसी मरदमी पर !!"

सिंभू हारा-सा बैठा रहा। फिर कहने लगा—"सरूपी, तू मुझे जोश मत दिला। मैं जनखा नहीं हूँ। अगर और किसी की बाबत ऐसा सुनता, तो अब तक मैं ही रहता या वह। पर जब अपना कोना खोटा हो, तो परखनेवाले का क्या दोस ! जब तुझमें ही खोट है, तो मैं और किसी से क्या कहूँ। चार बरस गौने को हुए ; इन चार बरसों में तैने सब जगह अपना नाम जाहिर कर लिया। कोई तेरी तारीफ नहीं करता। सब कहते हैं—अमीर की बेटी है, मा-बाप की सिर-चढ़ी है। बाप के यहाँ ही बिगड़ी है। उधर सब कोई रामसनेही और दुर्गा की तारीफ करते हैं। कोई उनके खिलाफ नहीं है। कोई उनकी शिकायत नहीं करता। चार बरसों में तैने

हजारों ऐसी बातें मुझसे कही हैं, जो अंत में गलत साबित हुईं। कहने को मुझमें और रामसनेही में दो पीढ़ियों का फटाव है, पर हम सदा सगे भाई से बढ़कर प्रेम से रहे। तेरे राज में चूल्हा अलग हुआ; घर अलग हुआ। अब बोल-चाल बाक़ी रही है, इसको भी कहे, तो बंद कर दूँ? तैने बोल-चाल बंद कराने के लिये भी सैकड़ों फंद-फरेब रचे, सैकड़ों कसमें खाईं, पर अंत में सब गलत साबित हुए। बता, तेरी इस कसम पर कैसे विश्वास करूँ?"

सरूपी पति की लंबी वक्तृता से ऊब-सी उठी थी। जब सिंभू चुप हुआ, तो कहने लगी—"अब तुम्हें मैं कैसे बिसवास दिलाऊँ? कहो, जिसकी कसम खा जाऊँ, कहो जो करूँ। अब की दफा सारा गाँव गवाह है। और, मेरे मुँह की दसा तो तुम खुद भी देख रहे हो। कहो, क्या यह मुँह भी मैंने तुम्हारे भाई को बदनाम करने के लिये जला लिया?"

अब की बार सिंभू बहुत देर तक चुप बैठा सोचता रहा। सरूपी बोलने लगी—"दूसरे की स्त्री

पर हाथ उठाना क्या हँसी-खेल है। सवेरा होने दो, मैं खुद थाने में रपट लिखाकर आऊँगी। अब तक तुम्हारी बाट देख रही थी। पर तुम—तुम किसी करत (कृत्य) के नहीं हो। तुम भाई से बोल-चाल किया करो; मैं इस हरामजादे पर मुकदमा चलाऊँगी—बला से अदालत चढ़ना पड़े। कल ही मकदूमा नाई के हाथ दरोगा भाई को बुलवाती हूँ। चाहे धन को पानी बनाना पड़े, पर इस नासपीटे को जेल कराकर छोड़ूँगी। हुँः! इसने समझा क्या है!!"

सिंभू ने लंबी साँस छोड़ी, और आप ही कहा—"हे भगवान्! कैसे इस घर का कलेस मिटेगा!!" फिर स्त्री से बोला—"अच्छा भाई, सुबह होने दो; अब सो जाओ।"

बेचारा सिंभू भूखा-प्यासा नंगी बान की चारपाई पर पैर फैलाकर पड़ रहा।

सरूपी कब तक बड़बड़ाती रही, इसका हमें पता नहीं।

एक सहन है। सहन कच्चा होने पर भी साफ़ और समतल है। कहीं किसी प्रकार की गंदगी या कूड़े-कर्कट का नाम नहीं। एक तरफ़ लकड़ी की घड़ौंची पर पानी के कुछ मिट्टी और पीतल के पात्र रक्खे हैं। सामने की तरफ़ एक छोटा-सा कच्चा दालान है।

इस दालान में खाट पर एक पचीस बरस का हृष्ट-पुष्ट ग्रामीण बैठा है, और नीचे ज़मीन पर उसकी स्त्री हाथ में पंखा लिए धीरे-धीरे पति पर झल रही है।

युवक रामसनेही है, और युवती दुर्गा।

थोड़ा-सा इस कुटुंब का इतिहास कहना है। रामसनेही और सिंभू जाति के चौहान, और एक ही दादा के पोते थे; अर्थात् चचेरे भाई। परंतु दोनो—अपने पिताओं की एक-मात्र संतान होने के कारण—साथ-साथ ही रहते थे। प्रेम सगे भाई से भी अधिक था।

बचपन में साथ-साथ खेले थे, और विवाह तक दोनों का व्यवहार वैसा ही स्नेह-पूर्ण रहा। सिंभू रामसनेही से कुछ महीना बड़ा था। रामसनेही के पिता का देहांत उसकी ग्यारह वर्ष की अवस्था में हो गया था। उसके बाद सिंभू के पिता ने ही उसे पाला, और समयानुसार उन्होंने ही उसका विवाह किया था। उसके बाद वे खुद भी इस संसार को छोड़कर चलते हुए।

सिंभू रामसनेही को पेट के भाई से अधिक समझता था, पर शारीरिक शक्ति में रामसनेही से कमजोर होने के कारण एक प्रकार की चिड़चिड़ाहट सदा रामसनेही के प्रति उसके हृदय में बनी रहती थी। इस चिड़चिड़ाहट में विद्वेष नहीं था, क्रोध नहीं था, शत्रुता नहीं थी; केवल पराजय और दीनता का थोड़ा-सा खिसियापन था। इस खिसियापन के कारण उसके भ्रातृ-प्रेम में कोई बाधा नहीं पड़ती थी; बल्कि भाई के व्यक्तित्व का एक ऐसा ऊँचा भाव उसके मन में जम गया था कि भाई के विरुद्ध जाने के लिये उसका मन एकाएक तैयार न होता था।

सरूपी और दुर्गा के चरित्र और स्वभाव में बड़ा भेद था। सरूपी बकवादी थी, दुर्गा गंभीर; सरूपी क्रोध-पूर्ण थी, दुर्गा सहनशील; और आगे—सरूपी गोरी थी, दुर्गा साँवली; सरूपी अमीर की बेटी थी, दुर्गा ग़रीब की। ब्याह होकर आते ही सरूपी को रामसनेही पर अपने एहसान का आभास मिल गया। एक प्रकार के बड़प्पन का भाव रामसनेही के प्रति उसके हृदय में पैदा हो गया। रामसनेही उम्र में इससे बड़ा था, पर इसका व्यवहार वैसा न था। रामसनेही को वह अपना आश्रित—नौकर से कुछ ही ऊँचा—समझती थी।

उसके ससुर ने रामसनेही का विवाह करा दिया, तो मानो उसका अधिकार और एहसान कई गुना अधिक हो गया। रामसनेही की बहू आई, तो उस पर भी वह अपना यह बढ़ा हुआ अधिकार जताने में न चूकी।

सुशीला दुर्गा ने सरूपी को अपनी बड़ी समझकर उसका सब अनाचार सहन किया। पर इससे

सरूपी को कोई खुशी नहीं हुई। कर्कशा स्त्री को कर्कशा के साथ ही वाक्-युद्ध में मजा आता है; उसके वाक्-बाणों में जब तक बराबर की टक्कर न लगे, तब तक उसका मन शांत नहीं होता। दुर्गा की सहनशीलता ने उसके संकुचित हृदय पर कोई अच्छा प्रभाव नहीं डाला, और उसने अधिक-से-अधिक अत्याचार करके दुर्गा को सामना करने पर मजबूर करना शुरू किया।

उसके अत्याचारों का एक उदाहरण गाँव में बहुत प्रसिद्ध है। एक दिन सरूपी रोटी पका रही थी। उसने दुर्गा से कहा—"तवे के नीचे लगाने को एक मिट्टी की डली ले आ।" दुर्गा गई। मिट्टी की डली मिली नहीं; वह एक छोटी-सी ईंट उठा लाई, और लाकर जिठानी के हाथ में दे दी। सरूपी सिर से पैर तक जल उठी और कड़ककर बोली—"राँड़, तुमसे मिट्टी मँगाई थी कि ईंट?" यह कहकर वह ईंट उसने दुर्गा के मस्तक पर खींच मारी। खून बह निकला।

ऐसे रोज के झगड़ों से रामसनेही ऊब उठा। उसने नम्रता-पूर्वक सिंभू से अलग होने की प्रार्थना की। सिंभू भी पत्नी की ज्यादतियों से अनभिज्ञ न था। उसने आँख में आँसू भरकर रामसनेही का अलग चूल्हा कर दिया।

इसके बाद भी लड़ाई बंद न हुई और एक दिन रामसनेही और उसकी बहू दूसरे घर में जाकर रहने को मजबूर हुए।

लड़ाई अब भी पूरी तौर से बंद नहीं हुई; कुछ कम जरूर हुई। कभी किसी बात पर, कभी किसी पर—सरूपी लड़ने आ पहुँचती थी। उस दिन घनश्याम (रामसनेही का तीन बरस का बालक) मनोहर के साथ खेलते-खेलते नाई की दूकान पर चला गया। वहाँ इन दोनो ने खेल-खेल में अपने सिरों के थोड़े-थोड़े बाल काट दिए। मनोहर जब घर आया, और सरूपी ने कटे बाल देखे, तो समझा—यह दुर्गा का काम है। वह गालियाँ बकती, चिल्लाती आई और रामसनेही तथा घनश्याम को कोसने

लगी। दुर्गा ने हाथ जोड़कर शांत करने की कोशिश की, पर वह न मानी। इसके परिणाम-स्वरूप जो हुआ, आपको मालूम है।

रामसनेही ने जोश में भरकर थाली फेंक तो मारी, परंतु दूसरे क्षण ही उसे अपने कर्म पर खेद हो आया। रोटी तक न खाई और उद्विग्न-चित्त उसी समय उठकर खेत पर चला गया।

पति का काम दुर्गा को भी पसंद नहीं आया। पर वह कर क्या सकती थी? हाँ, रामसनेही के मानसिक अनुताप का आभास वह अवश्य पा गई, और इससे उसके हृदय ने थोड़ा संतोष-लाभ किया।

रामसनेही शाम को लौटा। दिन-भर उसने पछतावा किया। डरते-डरते घर में घुसा। उसे भय था—दुर्गा अवश्य नाराज़ होगी। पर दुर्गा ने एकदम कोई ऐसी बात नहीं कही, जो उसके हृदय को दुःख पहुँचानेवाली हो। उसने गंभीर भाव से खाना परोसा, और जब पति ने जाकर खाट पर आसन जमाया, तो आप भी पंखा हाथ में लेकर, पटरा बिछाकर नीचे बैठ गई।

तब बात शुरू हुई।

दुर्गा ने मीठे परंतु खेद-पूर्ण स्वर में कहा—"आज क्या हो गया था तुम्हें?"

रामसनेही ने गर्दन नीची कर ली। मुँह से कुछ बोल न सका; चेहरे पर खिसियानपन झलकने लगा।

दुर्गा ने कहा—"हमेशा से इतना सहते आए हैं, क्या आज एक मामूली-सी बात पर इतना बिगड़ बैठना उचित था? तुम तो मरद हो, मैं तुम्हें सीख देती क्या अच्छी लगूँगी, पर सोचो तो, तुम्हारे भाई ने और तुम्हारे ताऊ ने तुम पर कैसा एहसान किया है। औरत जात तो बुरी होती ही है; मरद को औरतों की बातों पर अपना धीरज नहीं छोड़ना चाहिए।"

रामसनेही की आँखों में आँसू भर आए।

दुर्गा ने पति का हाथ पकड़ लिया। कहा—"वाह! यह भी कोई मरदमी है; रोना काम औरतों का है मरदों का? तुमने जो गलती की है, रोने से क्या वह दूर हो जायगी?"

रामसनेही ने अब की बार सँभलकर कहा—"गलती तो बेशक की है; पर बताओ, कहाँ तक सहें, अब तो उनसे कोई संबंध भी नहीं।"

दुर्गा ने कहा—"अपना अपना सुभाव है। उसका सुभाव लड़ने का है, हमारा सुभाव सुनने का है।......तुमने उस साधु और ततैए की कथा नहीं सुनी; उसने बार-बार उसे बचाया और उसने बार-बार काट खाया? सो यह तो अपना सुभाव है। और, हम पर तो उन लोगों का कुछ एहसान है।"

रामसनेही ने कहा—"एहसान है तो मेरे ताऊ का; उस चुड़ैल का क्या? और मैंने तो उसो दिन से बराबर का कमाया है, जिस दिन चाचा मुझे छोड़-कर चले गए; मैं कैसा एहसान मानूँ? वह होते, तो ये दिन क्यों देखता?"

रामसनेही फिर रोने लगा।

दुर्गा ने कहा—"रोना-धोना तो बावलापन है। मरदमी इसी में है कि जो कुछ किया, उसका पराशाचित (प्रायश्चित्त) करो......।"

रामसनेही चुप रहा। फिर सँभलकर कहने लगा—"क्या कहें, मालूम ऐसा होता है कि यह चुड़ैल सिंभू से हमारी बोल-चाल भी बंद कराएगी।"

दुर्गा ने कहा—"हाँ, वह तो दिखती ही है। पर तुम्हें अपनी भूल जरूर मान लेनी चाहिए। आज सचमुच तुमने नादानी का काम किया है।"

रामसनेही बोला—"खैर, अब जैसा होगा, देखा जायगा। बोल-चाल रखने से ही मुझे कौन-सा लाभ था, जो अब न रहेगा......।"

"लाभ-वाभ का सवाल तो पीछे है, पहले अपनी उस गलती का तो कुछ पछतावा करो, जो सचमुच बड़ी भारी भूल है।"

"......और बोल-चाल बंद हो जायगी, तो हो जाओ, दिलों की मुहब्बत तो दूर नहीं हो सकती। हाय! इस बदकार की बदौलत हम लोग कितने दूर-दूर होते जा रहे हैं!"

"अपनी-अपनी हाँके जाते हो, मेरी तो सुनते नहीं......।"

"क्या ?"

"मैं कहती हूँ, तुमने आज अपराध किया है, उसका कुछ पराशचित करो; नहीं मेरे कलेजे पर बोझ-सा रक्खा रहेगा।"

"पराशचित?—कैसा पराशचित ? मैंने कोई दुनिया से उपरांत काम तो कर ही नहीं डाला। आखिर आदमी हूँ, आ गया गुस्सा; पर अब फिर कभी इधर आने का नाम न लेगी; सदा के लिये फंद कट गया। लात का देव, बातों से नहीं मानता।"

"बस, तुम्हारी यही बात तो बुरी लगती है। जरा-सी देर में रोने को तैयार और जरा-सी देर में यह कहने लगे।......तुम्हें पता है, पराई स्त्री पर हाथ उठाना बड़ा भारी जुरम है, और सरकार की तरफ से ऐसा करनेवाले को सजा मिलती है।"

"हुँ! जाय ना वह सरकार में!—देखूँ कौन-सी फाँसी लगवा देती है!"

"वाह! मैं तो कुछ कहती हूँ, आप कुछ!—तुम्हारा हिरदा तो कहता ही है—तुमने भूल की, तुम्हारा

भगवान तो तुम्हें धिक्कारता ही है, अब तुम्हें इस धिक्कार पर जरूर ध्यान देना चाहिए।"

"..........."

"मेरी राय में तुम्हें इसका कठोर पराशचित करना चाहिए, तभी तुम्हारी आत्मा साफ होगी और मेरा मन शांत होगा।"

"तो मैंने जो कुछ थोड़ी-बहुत भूल की, उसके लिये घंटों अपने जी को मलामत दे ली। अब और पराशचित क्या करना रह गया? कोई जान तो दी नहीं जाती!"

"बात यह है कि तुम्हारी सहनसीलता की जो सब देखने-सुननेवाले वाह-वाह करते हैं, तुम्हारे मन-ही-मन पछतावा करने से वह तो तुम्हारी गलती को माफ नहीं करेंगे? और सरूपी के जी में—या जेठजी के जी में तुम्हारी तरफ से जो बुरे भाव पैदा हो गए होंगे, वे तो दूर नहीं हो जायँगे?"

"फिर? इसका क्या उपाय?"

"......इसका उपाय खुद ही सोचो।"

"मेरी समझ में तो नहीं आता।"

"नहीं आता ?"

"हाँ, नहीं आता ; तुम्हीं बताओ।"

"मैं बताऊँ ?"

"हाँ।"

"बुरा तो नहीं मानोगे ?"

"बताओ तो सही ; बुरा मानने से क्यों डरती हो।"

"मेरी मानो तो जाकर सरूपी से क्षमा माँग लो।"

"वाह वा, वाह ! खूब उपाय बताया ! उस हरामजादी चुड़ैल से मैं जाकर क्षमा माँगूँ ! वह बदकार..."

"देखो, सोच-समझकर बात मुँह से निकालो। आखिर तुम्हारी भाभी है, बड़ी है। कुछ तो लिहाज रक्खो।"

"कोई लिहाज रक्खेगा, तो रखाएगा। तुम तो सतजुग की पैदा हुई हो, मैं पापी तो कलजुग......"

"देखो, फिर बात को कहीं-की-कहीं उड़ा ले गए !"

"हाँ, तो फिर क्या करूँ ?"

"तो क्षमा नहीं माँगोगे ?"

"किससे ?—सरूपी से ?"

"हाँ।"

"कभी नहीं, मैंने एक स्त्री पर हाथ उठाया है, उसके लिये मेरे मन में जो पछतावा हुआ है, उसे परमात्मा जानते हैं। बस, मुझे और किसी की पर्वाह नहीं है।"

"देखो, मान जाओ, इससे तुम्हारी शान नहीं घटेगी ; उलटे बढ़ेगी।"

"वाह, मुझे ऐसी शान बढ़ानी नहीं है। मैं, उससे क्षमा माँगूँ !"

थोड़ी देर की मौन !

"अच्छा, एक काम करो।"

"क्या ?"

"......उसमें कुछ अपमान नहीं है।"

"क्या ?"

"अपने भाई से क्षमा माँग लो।"

"भाई से ?.........इसकी क्या जरूरत ?"

"बस, इसकी जरूरत पीछे मालूम हो जायगी।

तुम्हें मेरे सिर की कसम, इस बात के लिये नाहीं न करना।"

"नाहीं तो न करूँ, पर इससे होगा क्या? सिंभू का कुछ अपराध मैंने थोड़ा ही किया है, जिसकी क्षमा माँगूँ।"

"नहीं, मैं जैसे समझाती हूँ, वैसे करो। तुम्हें मेरी कसम।"

"इससे होगा क्या?"

"कुछ भी हो, तुम्हें मेरी कसम!"

"... ...अच्छा, सोचूँगा।"

"नहीं, सोचना-विचारना कुछ नहीं; अभी जाओ।"

"अभी?"

"हाँ, अभी।"

"वह तो सहर गया है; रात को आएगा।"

"......। सरूपी से नहीं माँग सकते?"

"अरे, राम का नाम लो! उससे......"

"अच्छा, जेठजी से माँगोगे?"

"देखा जायगा; अभी तो वह है नहीं।"

"नहीं, मेरी कसम खाओ, उनसे माँगोगे।"

"पर मैं कहता हूँ, इससे कोई लाभ नहीं।"

"नहीं, मैं कहती भी हूँ।"

"अच्छा।"

"अच्छा क्या ?"

"क्षमा माँगूँगा बाबा ?"

"मेरी कसम खाओ।"

"तुम्हारी कसम माँगूँगा ; जो कहोगी, करूँगा।"

× × ×

चिंता और खेद के सपने देखकर सिंभू सुबह उठा। सरूपी उठकर काम-धंधे में लगी हुई थी। सोते से नहीं जगाया—पति के ऊपर इतनी कृपा उसने की, पर उसके जाग जाने पर भी शांत रह जाने की महान् कृपा वह न कर सकी। झाड़ू देती-देती बड़बड़ाने लगी।

"जब तक जीना, तब तक सीना; औरत की जात का क्या है, जीती रहे, तब तक नौकरनी से भी बुरी—दिन-भर धंधे पीटो, सब कुछ सुनो, गैर मर्दों

तक से पिटो—जब मर जाय, तब पैर की जूती ; पुरानी उतार दो, नई पहन लो।"

सिंभू पीला पड़ गया। रात की घटना स्वप्न की तरह उसकी आँखों के आगे नाच गई। हा दुर्भाग्य! कल सारे दिन का भूखा, रात-भर की बेचैन नींद, और सबके बाद अब सुबह उठते ही लड़ाई का आरंभ! बेचारे ने कष्ट से आँखें बंद कर लीं, कुछ देर पत्नी की बड़बड़ाहट सुनता रहा, फिर ऊबकर क्षीण स्वर में कहने लगा—"हे भगवान्, तू एक वक्त रोटी दीजो, पर ऐसी स्त्री किसी को नहीं। ईश्वर! या मुझे उठा ले या इसे। जो स्त्री पति के सुख-दुःख का खयाल किए बगैर हर वक्त उसका खून पीने को तैयार रहती है, मैं उसके बिना भी रह सकता हूँ, और उसे छोड़कर मरना भी पसंद करता हूँ।"

सरूपी ने सुना, तो सिर से पैर तक जल उठी। झाड़ू डाली एक तरफ़, और क्रुद्ध मुद्रा बनाकर कर्कश स्वर में बोली—"मैं तो खुद परमात्मा से हाथ जोड़ती हूँ, वह मेरा चोला बदल दे, पर क्या करूँ, जब तक

आए नहीं, तो कैसे मर जाऊँ ! परमात्मा किसी को ऐसा पति न दे, जो दूसरे मर्दों से अपनी घरवाली को पिटवाकर भी चुपचाप बैठा रहे ।"

सिंभू के हृदय में क्रोध, क्षोभ और विवशता का एक ऐसा प्रबल बवंडर उठ खड़ा हुआ कि कुछ क्षण के लिये वह अपने आपको भूल गया। मुख की चेष्टा विकृत हो गई, दाँत कट-कट बजने लगे और लड़खड़ाते स्वर में बोलने लगा—"हरामजादी ! बेहया ! तेरी किस बात का विश्वास करूँ ? तुझे मालूम है, अगर तेरी बात सच होने का मुझे विश्वास होता, तो आज इस दुनिया में मैं ही रहता, या तेरे ऊपर हाथ उठानेवाला !"

सिंभू का उत्तेजित स्वर सुनकर सरूपी पहले-पहल कुछ डरी, पर उसके उत्तेजित कथन के पिछले भाग से उत्साहित होकर उसने हाथ नचाकर कहा—"हाँ, तुम्हें क्या मालूम ! जिसके लगती है, वही जानता है। मेरी जैसी दुर्गति हुई है, मैं ही जानती हूँ। हाय ! मैंने तुम पर कैसा भरोसा किया था—

आकर यह करेंगे, वह करेंगे ! पर, तुम तो मेरी बात का विसवास तक नहीं करते !"

सरूपी यह कहती-कहती रो पड़ी।

सिभू क्या करे ? वास्तव में उसे सरूपी की बात पर विश्वास ही नहीं हो रहा था। अगर आते ही उसे किसी प्रकार मालूम हो जाता कि रामसनेही ने उसकी स्त्री के प्रति क्या व्यवहार किया, तो शायद भाई के पक्ष में उसके हृदय में कोई तर्क पैदा हुआ होता। पर सरूपी के निरंतर क्लेश ने एक के सिवा और सभी तर्कों का अभाव कर दिया। वह तर्क यही था—सरूपी की बात तथ्य-हीन है।

पत्नी की बात सत्य प्रमाणित होने पर, उसके मन में क्या भाव उठेंगे—वह अभी नहीं बताए जा सकते। अस्तु।

सरूपी के इस रुदन का कोई प्रभाव उस पर नहीं पड़ा। वह कोई कड़ा उत्तर देना ही चाहता था कि इसी समय बाहर से किसी ने द्वार में धक्का मारा।

सिभू ने कहा—"कौन है ?"

"मैं हूँ रामसनेही, जरा किवाड़ खोलिए।"

सिंभू और सरूपो दोनों ही चौंक पड़े। राम-सनेही क्यों?

सिंभू अभी तक यह निश्चय नहीं कर पाया था कि सरूपी का पक्ष लेकर रामसनेही से किस प्रकार बात करेगा। कारण यही था कि रामसनेही से उसे ऐसे व्यवहार की आशा नहीं थी, जैसा सरूपी ने बयान किया। तो भी एक बार उससे मिलकर निश्चय कर लेने का उसका विचार था।

अब रामसनेही के खुद आ जाने से तो मानो मुँह-माँगी मुराद मिली।

"जा, आगल हटा दे।" सिंभू स्त्री से बोला।

सरूपी ने कोई ध्यान न दिया। आँसू पोछते हुए उसने झाड़ू उठा ली, और गर्दन घुमाकर, पीठ फेरकर आँगन साफ़ करने लगी।

सिंभू बेचारा खुद ही उठा, और आगल खोल दिया।

रामसनेही कैसे आया? क्या सरूपी की शिकायत करने आया है? संभव है। कहीं यह राँड़ इसके घर

और कोई अनर्थ तो नहीं कर आई है ? और अपना अपराध छिपाने के लिये ही यह ढोंग रचे हुए हो ?

ये संक्षिप्त विचार थे, जो खाट से उठकर द्वार तक जाने के समय में सिंभू के मन में उठे।

रामसनेही ने कहा—"राम-राम भैया।"

"राम-राम। आओ।"

दोनो भीतर आए। खाट पर दोनो बैठ गए। सिंभू ने सरूपी से कहा—"जरा चिलम भरियो। और गुड़गुड़ी भी ताजी कर दीजो।"

रामसनेही को सामने देखकर सरूपी का शरीर क्रोध से काँप रहा था। उसके प्रति पति का यह आदर-भाव देखकर तो उसकी मानसिक अवस्था अद्भुत हो गई। तिस पर पति की यह आज्ञा सुनकर वह पीठ फेरे ज़ब्त न रख सकी। खड़ी होकर कड़ककर बोली—"जिस हरामजादे ने मेरे ऊपर हाथ उठाया, तुम जमाई (दामाद) बनाकर उसकी खातिर करोगे ? हूँ ! मैं इसकी छाती का खून पिऊँगी !"

सिंभू ने गरजकर कहा—"हरामजादी की जबान

खींच लूँगा, बक-बक लगाई तो। चुप रह। चल, जो कहा, वह कर ; चिलम भरकर ला।"

इधर क्रोध, अपमान और लज्जा से रामसनेही का चेहरा सुर्ख़ हो रहा था। कहने लगा—"बस भई सिंभू, रहने दो ; मैं इस चुड़ैल के हाथ की चिलम नहीं पिऊँगा। सच पूछो, तो मैं यहाँ आकर भी पछता रहा हूँ। मैं आया था किसी और काम से—कोई और बात कहने—पर अब वह बात कहकर मैं अपनी हेठी कराना नहीं चाहता। अब मैं कहता हूँ—हमारा-तुम्हारा चूल्हा जुदा हुआ, घर जुदा हुआ, अब आज से आना-जाना, बोल-चाल और लेन-देन भी ख़त्म। आज से हम तुम्हारे लिये मर गए, तुम हमारे लिये। (सरूपी की ओर संकेत करके) और इस हरामजादी को मैंने अपने घर में देख लिया, तो कल तो खीर की थाली ही फेंकी थी, अब जूतों से इसकी ख़बर लूँगा!"

सिंभू चमक उठा। सरूपी की बात सच है! रामसनेही ने मेरी स्त्री पर हाथ उठाया है! और मेरे सामने ही उसे ऐसी भद्दी गालियाँ दे रहा है! मैंने इसका

इतना आदर किया, और इसका बरताव यह ! मैं इसे अपना समझता हूँ, और इस तरह पेश आता है ! लानत है, ऐसे भाई पर ! और धिक्कार है मुझ पर, जो फजूल इसकी सुनूँ !!

उसने कहा—"देखो रामसनेही, जबान सँभालकर बात करो। अगर ताकत का घमंड हो, तो मैं भी चून का पुतला नहीं हूँ, याद रखना। स्त्रियों पर हाथ उठाना कोई मर्दमी नहीं है। तुमने........"

रामसनेही का क्रोध बढ़ता ही जा रहा था। बात काटकर कहने लगा—"क्या कहते हो, यह स्त्री है ? यह राक्षसी है—राक्षसी ! हम किसी के दबैल नहीं हैं। अमीर की बेटी है, तो हम कुछ भीख माँगने नहीं आते। हमने बड़ी भूल की, जो अब तक सुनी ; अब हम नहीं सुनेंगे। किसी की जीभ में ताकत हो, वह जीभ से काम ले, हमारे हाथ-पैर में दम है, हम उनसे काम लेंगे। बस !"

रामसनेही यह कहता-कहता खड़ा हो गया।

सिंभू ने आरक्त नेत्रों से कहा—"रामसनेही, ज्यादा

जोश न दिलाओ। औरतों के झगड़े को इतना तूल न दो। पता नहीं, मैं क्या समझकर गम खा रहा हूँ। तुम्हीं थे, जो मेरी औरत पर हाथ उठाकर सही-सलामत हो........."

रामसनेही ने सिंभू की पूरी बात सुनने की पर्वाह न की और दर्वाज़े पर से बोला—"खैर, जो तुमसे बने, कर लेना।"

सिंभू के मुँह से निकला—"यह घमंड किसी दिन लेकर डूबेगा!"

---

(३)

पिछली घटना के आठ दिन बाद की बात है। साँझ होने को थी। सिंभू एक दूसरे गाँव से घर को लौट रहा था। अचानक पीछे से आवाज़ आई—"ठाकुर साहब, राम-राम!"

सिंभू फिरा। देखा—कुतबी धोबी था।

कुतबी इक्कीस बरस का है, और सिवा दाँतों के उसका सारा अंग घोर काला है।

सिंभू ने कहा—"कहो भई कुतबी, राज़ी हो?"

"सब आपकी महरबानी है ठाकुर साहब।"

"अरे भाई, महरबानी तो परमात्मा की है। हम तो संसार में नाचनेवाले मिट्टी के पुतले हैं; एक दिन ठसक लगेगी—फूट पड़ेंगे।"

"हाँ साब, यह बात बिल्कुल सच्ची है। पर तो भी आप लोगों का बहुत सहारा है, आप लोगों की महरबानी भी......भला क्यों नहीं है?"

सिंभू खुश हुआ। बोला—"यह सब तुम्हारे सील-सुभाव की बात है, नहीं तो हम क्या—तुम क्या, सब उस भगवान की माया है।......हाँ, यों तुम हमारे भाई हो, हमारे साथ खेले हो; हमसे जो बने, उसके लिये सदा तैयार हैं।"

"अरे ठाकुर साब, आप लोगों का तो भरोसा है ही? ऐसा अन्याव तो सहरों में ही है......"

"कैसा?"

"अजी, सुसरे बदमास पैदा हो गए हैं बहुत-से। दस-बीस हिंदू मिल गए, दस-बीस मुसलमान बदमास मिल गए, झगड़ा हो गया।......नतीजा इसका क्या हुआ? हिंदुओं ने मुसलमानों का बाईकाट किया, मुसलमानों ने हिंदुओं का। आपस में कसा-कसी बढ़ी, गरीबों की रोजी मर गई!"

"सचमुच; जाने लोगों की बुद्धि पर क्या पत्थर पड़ गए, जो एक देस का पवन-पानी पीकर सिर फुटौ-वल करते हैं। दो-चार बरस पहले तो कहीं ऐसी लड़ाई का नाम भी नहीं था!"

"अजी, असल में लड़ाई तो सरकार कराती है। गांधीजी ने हिंदू-मुसलमानों को मिलाया, तो सरकार का आसन हिला। उसने सोचा—'हमें इस मुल्क से भागना पड़ेगा,' इसलिये आपस में तिफरका करा दिया। दस-बीस गुंडे बदमासों को लालच देकर लड़वा दिया, फिर बड़े-बड़ों में रंज बढ़ गया। बस !"

कुतबी की बात सुनकर सिंभू को बड़ी जिज्ञासा पैदा हुई। सरकार क्यों लड़वाती है ? कैसे लड़वाती है ? महात्मा गांधी सरकार को क्यों भगाना चाहते हैं ? कैसे भगाना चाहते हैं ? इत्यादि। परंतु जो आदमी उससे छोटा है, उसके सामने अपनी अज्ञानता प्रकट करने में अपमान समझ, उसने कहा—"सच है। यही बात है।......तो तुम्हारा काम सहर में चला नहीं ? अभी एक महीना होता है, तभी तो तुम गए हो !"

"हाँ, कोई पंद्रह दिन हुए। बीस रुपए घर से लेकर चला, सब बर्बाद करके आ रहा हूँ। सहर में हिंदुओं की ही ज्यादा बस्ती है। जहाँ गया—सवाल हुआ—'हिंदू हो—मुसलमान ?' जब कहा—'मुसल-

मान !' तो कहा गया—जाओ, मुसलमान को हम कपड़े नहीं देंगे ! बहुतेरा फिरा-फिराया। आखर हार-कर आज लौट आया।"

"ओफ्फो ! बड़े जुलुम की बात है ! अच्छा किया, जो चले आए।"

"हाँ, मैंने सोचा—गाँव में कुछ तो धरम-न्याव है ही। कुछ नहीं मिलेगा, तो मटर-सरकंदी के खेत तो नहीं गए ?"

"नहीं जी, मटर-सरकंदी के खेत क्यों ? गाँव चलो, तुम्हारे पेट का इंतजाम हम कर देंगे।"

"तुम्हारा तो ठाकुर साब भरोसा ही है।...... ताऊ (सिंभू के पिता) की रोटियों पर ही मेरा तो बचपन कटा है। मुझे तो वही बखत याद है।"

"नहीं जी, दुनिया में एक से दूसरे का काम इसी तरह निकलता है। हमारे बाजरे के खेत पर एक आदमी की जरूरत है। दिन-भर वहीं पड़े-पड़े मौज करो। बे फिकर रहो, रूखी-सूखी साग-रोटी—जैसी हमारी है—हमेशा तैयार है !"

"मैं तो कहता ही हूँ—तुम्हारा तो भरोसा ही है।......जभो तो कहता हूँ—गाँव में फिर हिंदू-मुसलमान का सवाल नहीं है। बात यह है न......"

"नहीं भाई, ऐसा नहीं है। सहर की चिनगारी आ तो गाँवों में भी पड़ी है। और लच्छनों से तो मालूम होता है—गाँवों में जल्दी ही आपस में लट्ठ बजने सुरू हो जायँगे।"

"नहीं ठाकुर साब, गाँवों में अभी ऐसा अन्याव नहीं है।"

"अरे, तुम्हें पता नहीं ?......हाँ, तुम तो सहर गए हुए थे। उस रमसनेहिया ने एक अखाड़ा खोला है......"

"नूरन उस्ताद के से अलग ?"

"हाँ।......उसमें सिर्फ हिंदू-ही-हिंदू आ सकते हैं। बताओ, है न जास बढ़ाने की बात ? नूरन मियाँ मुसलमान हैं, इसलिये हिंदुओं को उनके अखाड़े में नहीं जाना चाहिए। भला हुई कुछ बात ?"

कुतबी को रामसनेही और सिंभू की पिछली लड़ाई का पता नहीं था। वह जानता था—घर अलग

होने पर भी दोनो में सगे भाई से ज्यादा प्रेम है। इस समय सिंभू की ऐसी बात सुनकर वह एक बार बड़े चक्कर में पड़ा। फिर सँभलकर—सिंभू के दिल की थाह लेने के लिये—कहने लगा—"अच्छा! अलग अखाड़ा खोल लिया? ठाकुर तो ऐसे तंग-दिल आदमी थे नहीं! आखर बात क्या हुई? हनुमानजी की तसवीर तो नूरन उस्ताद के अखाड़े में भी है ही।"

"........अजी, खाम-खा का झगड़ा मोल लेना है। यहाँ भी कुछ खाना-पीना, लेन-देन है, जो हिंदू-मुसलमान का सवाल पैदा हो। अखाड़े में तो जरा हाथ-पैर झटकारने जाते हैं, आपस में इसी बहाने साहब-सलामत हो जाती है। मुहब्बत बढ़ जाती है। बस भाई, बस! पर जब चींटी की मौत आती है, या घर में ज्यादा खूराक इकट्ठी हो जाती है, तो उसके पर निकल आते हैं। पिछले दो साल खेती अच्छी हो गई है। इस साल भी खेत भरे खड़े हैं। सरीर में कुछ बादी भी बढ़ गई है। बस, बन बैठे पहलवान।"

"हाँ ठाकुर साब, बात तो आपकी सच है। जहाँ दो पैसे गाँठ में हुए कि हड्डियाँ कुलमुलाईं।...... आपसे तो अलग ही घर-गिरस्ती है न ?"

"अजी, हमारा ऐसे आदमी से निभाव रक्खा है! मरदों से लड़े तो लड़े, औरतों तक से झगड़ा करे। भला कोई बात है!"

"बहुत बुरा साब, बहुत बुरा। औरतों से झगड़ा ?......"

"हाँ जी, झगड़ा क्या—तुम्हारी भाभी पर एक दिन हाथ तक उठा बैठा! ससुरा, लुच्चा कहीं का!"

"हाथ उठा बैठा! क्या सच ?"

"हाँ जी! सच नहीं तो झूठ ?"

"ठाकुर साब, इतबार नहीं होता। कैसे हाथ उठा बैठा ?"

"अजी, भला क्या मैं तुमसे झूठ बोलता ?"

"कब की बात है ?"

"अभी! आठ-दस दिन ही तो हुए!"

"अच्छा!! बड़ा बुरा किया साब! बात क्या हुई ?"

"अरे भई, कुछ बात न बात का सिर-पैर। एक दिन उसकी बहू ने तुम्हारे मनोहर के सिर के बाल काट लिए। हम तो इसका कुछ खयाल भी नहीं करते—तुम जानो—औरतों का मन ऐसा ही वहमी होता है; वह उससे पूछने चली गई।......"

"किससे ? दुर्गा से ?"

"हाँ।"

"अच्छा। फिर ?"

"बस साब, वह जोरू के गुलाम भी वहीं मौजूद थे। उसके जाते ही खीर-भरी थाली उठाकर उसके मुँह पर फेंक मारी; सारा मुँह झुलस गया—और लकड़ी लेकर खड़ा हो गया। वह तो कहो—अपनी इज्जत बचाकर वह चली ही आई, नहीं पता नहीं, और उसके जी में क्या करने की थी !"

"ओफ्फो ! इतनी हिम्मत ! तुम कहाँ थे ठाकुर साब ?"

"मैं जरा सहर चला गया था। खैर जी—आकर देखा—तुम्हारी भाभी का सारा मुँह जला हुआ।

सब माजरा सुना। तैश तो बहुत आया, एक बार जी में आई—जाकर गँड़ासे से सिर उतार लूँ; बला से फाँसी चढ़ना पड़े—पर कुछ सोचकर गम खाई......"

"वाह! धन्य है! आखिर बड़े तो बड़े ही रहेंगे!!"

"......खैर जी, खून की घूँट पीकर रह गया। तुम्हारी भाभी को समझा-बुझाकर चुप कराया।......"

"फिर?"

"सुनते जाओ। दूसरे दिन सबेरे-ही-सबेरे आप आ पहुँचे।......"

"कौन?"

"रामसनेही।......आए। मेरी लायकी देखो। मेरी औरत पर हाथ उठाया! पर मैंने विचारा—आखिर भाई है, और फिर घर आए का निरादर नहीं करना चाहिए—मैंने हुक्का दिया, चारपाई पर बैठाया। पर उसके तो दिमाग असमान पर थे। उसके जी में तो लड़ने की थी! आते ही लड़ना

सुरू कर दिया। तुम्हारी भाभी भी वहां खड़ी थीं। उसे भी कहने में कुछ कसर न रक्खी, मुझे भी। पर—एक चुप्प, सौ को हराती है। हम दोनो ने भी वह चुप्पी साधी, जिसका नाम ! मैंने एक दफा यह तो कहा—'देखो रामसनेही, औरत पर हाथ उठाना बड़ा पाप है।......और जिसमें यह तुम्हारे बड़े भाई की स्त्री थी, तुम्हारी मा के बराबर थी !... खैर, किया, सो ठीक किया। अब तुम फजूल को पित्ता मत उछलवाओ।' बस ! और मैंने कुछ नहीं कहा। बकता-झकता आप चला गया।"

"वाह ठाकुर साब, धन्य है तुम्हें ! इतना गम खाना हरएक का काम नहीं है। मैं होता, तो ऐसे आदमी को एक घड़ी जीता नहीं छोड़ता, चाहे पीछे फाँसी क्या—तत्ते चिमटे भी लगाए जाते !"

"अरे भाई, हमें तो ऐसी सिच्छा ही नहीं मिली है। चाचा कहा करते थे—'गाली जिस मुँह से निकलती है, उसी को गंदा करती है, अपना कुछ नहीं बिगड़ता।' सो, हम तो इसी नीती के आदमी हैं।"

"वाह ! ताऊ भी ताऊ थे ! वाह ! कैसी सीख दी है ! वाह ! जैसा बाप, वैसा बेटा ! धन्य है !!"

"एक तुम क्या—गाँव-गाँव में चाचा की तारीफ होती है। सचमुच भाई, चाचा तो चाचा ही थे। जब मरे थे, तो बाहर गाँवों के किसानों की हा पाँच सौ चद्दर अर्थी पर थीं। सदा सबका भला चाहा, सदा सबसे मिलकर चले। पाँच बरस का बच्चा भी गाली दे, तो भी माथे पर मैल नहीं ! क्या बताऊँ, चाचा के जीते-जी मुझे किसी बात की फिकर नहीं थी।"

"परमात्मा की मर्जी है ठाकुर साब, इतने गमगीन क्यों होते हो ! ताऊ वाकई 'एक' आदमी थे ! सबका सदा भला किया। इसी रामसनेही—अपने भाई साब—को ही देख लीजिए......"

"हाँ, इसी रामसनेही को देख लो ! इसका क्या नहीं किया ? पाला-पोसा, खिलाया-पिलाया, ब्याह दिया। सब लायक किया और जिसका बदला इसने यह दिया है !"

'दुनिया बड़ी खोटी है ठाकुर साब, बड़ी खोटी

है ! बड़ी खोटी है !! जिसको अपना समझो, वही गर्दन उतारने को तैयार है !!"

"खैर जी, 'कर भला, हो भला, अंत भले का भला' ; अपने राम तो इसी नीती के कायल हैं।"

"धन्य है ठाकुर साब ! तुम्हारे सुभाव की मैं जितनी तारीफ करूँ, थोड़ी है।"

"चलो सब ठीक है !"

'एक बात कहूँ ठाकुर साब ?"

"एक नहीं—दो !"

"बुरा तो न मानोगे ?"

"नहीं जी, बुरे का क्या काम ?"

"मेरी कसम ?"

"ऐ लो, तुम मेरे बुरे की बात तो कहोगे नहीं, जो बुरा मान जाऊँगा।"

"बात यह है ठाकुर साब—"

"............?"

"ऐसे आदमी को कुछ-न-कुछ सजा तो जरूर मिलनी चाहिए।"

"........."

"समझे ठाकुर साब ?"

"अरे भाई, समझे सब कुछ, पर सजा देनेवाला तो वही परमात्मा है, जो सब बातों को देखता है ; हम कौन होते हैं ?"

"वाह ठाकुर साब, यह भी एक ही रही। यह बात आपकी गलत है।"

"कैसे ?"

"जो आदमी हमसे दुसमनी करता है, उसे सजा भी अगर परमात्मा ही देता है, तो हमारे और सब काम भी परमात्मा ही को करने चाहिए।"

"हाँ, करता क्यों नहीं ?"

"वाह ! क्या रोटी उठाकर हमारे मुँह में डाल देता है ? क्या हम जंगल जाते हैं, तो हमारे हाथ धुआ देता है ? क्या हमें कपड़े पहना देता है ?"

कुतबी की दलील पर सिंभू हँस पड़ा। कहने लगा—"वाह ! यह भी कोई बात है !!"

"वाह ! बात कैसे नहीं ! ठाकुर साब, परमात्मा

ने हमें पैर दिए हैं, चलने-फिरने के लिये; आँख दी है, देखने के लिये; कान दिए हैं, सुनने के लिये; हाथ दिये हैं, दुसमन की खबर लेने के लिये......। 'तरह' देने की भी हद्द होती है। ज्यादा 'तरह' देने से तो एक की देखा-देखी सब कोई बेजा दबाव डालने लगते हैं। ज्यादा लिहाज-मुलाहजा भी ठीक नहीं; चाहे सगा भाई हो—चाहे कोई और! अपना कोई रत्ती-भर आदर करे, तुम सेर-भर करो। अपने से कोई एक दफा नफरत करे, तुम पचास दफा करो। इस असूल पर चलने से ही दुनिया में गुजारा है ठाकुर साब, बखत बुरा है।"

सिंभू ने सोचा—बात तो ठीक है। इसका बदला जरूर लेना चाहिए। इसके बिना इसकी ऐंठ नहीं जायगी, न शिक्षा मिलेगी।

पर कहे कैसे?

कुतबी सिंभू का भाव ताड़ गया। कहने लगा—"ठाकुर साब होने को रामसनेही तुम्हारे भाई हैं, पर काम उन्होंने ऐसा बेजा किया है, जिसकी जो सज़ा दी जाय, थोड़ी है।"

"............"

"तुम्हारी लायकी की तारीफ नहीं की जा सकती, पर ऐसी बेजा हरकत को चुपचाप सह लेना बहुत बुरा है। ओफ्फो ! औरत पर हाथ उठाना कैसे जुलुम की बात है !!"

"........."

"क्या मेरी बात कुछ जँची नहीं ठाकुर साहब ?"

"......अरे भाई, जँचे-जँचाए तो सब कुछ; मैं क्या पागल हूँ ? पर किया क्या जाय ! आखिर को अपना है, छोटा है; गलती हरएक इनसान से होती है।"

"ठाकुर साहब, यह बात तुम्हारी मान सकता हूँ कि किसी की गलती माफ कर देना ही बड़प्पन है, पर असल बात तो यह है कि गलती करनेवाला जब अपनी गलती माने, तब न ! रामसनेही छोटा है, गलती हो गई थी, आकर तुमसे माफी माँगता, कान पकड़ता, भाभी के हाथ जोड़ता ; चलो खतम होता। यह सब तो दूर किनार, और उलटा आकर लड़ने-

मरने पर उतारू हो गया !......सची बात कहने में क्या डर ठाकुर साहब ? हमें तो यह बात कुछ सिजल (उत्तम) नहीं जँचती !"

सिंभू थोड़ी देर चुप रहा, फिर कहने लगा—"अच्छा, देखो, तुमने इतनी बातें कहीं और मैंने सुनीं भी और मैं उसे इसकी सजा भी देना चाहूँ, तो क्या सजा दूँ ? वह औरतों में मसल मसूर (मशहूर) है न कि—'मा डायन होगी, तो क्या पूत को ही खायगी ?' बताओ, मैं क्या सजा इसे दूँ ?"

"मा डायन का सवाल तो छोड़ दो ठाकुर साहब, उसने ऐसा बरतावा किया है कि जिससे न वह मा रही, न वह पूत। अब तो जैसे-को-तैसा का सवाल है। जब उसने तुम्हारी इज्जत का खयाल नहीं रक्खा, तो तुम क्यों उसका मोह करते हो ? मैं तो कहता हूँ, उसने छटाँक-भर की चोट मारी, तुम सेर-भर की मारो।"

सिंभू—न-जाने क्यों, थरथरा उठा। धीरे से बोला—"नहीं भाई......!"

"नहीं भाई कैसे ? ठाकुर साहब, तुम्हारी भी तो कुछ इज्जत है! ऐसी-की-तैसी में जाय, ऐसा भाई! ठाकुर साहब गजब करते हो, मैं तो ऐसे भाई की........."

"अरे यार, गम खाने में ही भलाई है।"

"तुम्हारी बातें सुनकर मुझे तो बड़ा अचरज हो रहा है ठाकुर साहब, आप लोगों में तो औरतों के मामले में सिर कट जाते थे, खून की नदियाँ बह जाती थीं.........!"

कुतबी आश्चर्य का भाव प्रदर्शित करने लगा।

चोट लगी, और पूरी लगी। सिंभू इस चोट का पूरा अनुभव करके बोला—"कुतबी, तुम्हारी बातों से बड़ा तैस चढ़ता है। पर करूँ क्या? लोक-लाज भी कोई चीज है। छोटे भाई के खिलाफ कोई काम करना मुझे शोभा नहीं देता। अपने मन को तो धोखा दे लूँ, दुनिया को कैसे दूँ?"

"ठाकुर साहब, दुनिया अंधी नहीं है। मैं तो कहता हूँ, तुम्हारे इस 'तरह' दे जाने से चाहे बहुत-

से आदमी तुमसे नफरत करने भी लगे हों, बदला लेने से तो तुम्हें कोई बुरा कही नहीं सकता।"

"नहीं भाई, मैं सरेआम कोई काम नहीं कर सकता। मैं तो चाहता हूँ, वह जाने या मैं। उसे शिक्षा मिल जाय, मेरा जी ठंडा हो जाय।"

"बस! यही? यह कौन बड़ी बात है? कहो, तो मूठ छुड़वा दूँ? किसी को कानों-कान खबर भी न हो!"

"हरे! हरे! च! च! नहीं, नहीं, ऐसा नहीं!!"

"भाई पर मोह आता हो, तो लुगाई पर......?"

"हिश्! एक दिन मरकर परमात्मा के दरबार में भी तो पहुँचना है।"

कुतबी ने अब ज़रा निराश होकर कहा—"तो फिर क्या चाहते हो?"

"अरे, बदला लेना चाहता हूँ; जान लेना थोड़ा ही!"

"तो फिर कैसा बदला?"

"यही कोई थोड़ा-सा सबक मिल जाय।"

"...........कहो तो रात-बिरात में सिर फड़वा दूँ?"

".........नहीं भाई, इसमें भी जान का खतरा है।"

तो फिर क्या खाक बदला लोगे? सुई चुभा दूँ?"

"नहीं भाई, नाराज न हो। बदला लेना चाहता हूँ, पर ऐसा सख्त नहीं, जिसमें जान का खतरा हो।"

कुतबी उछलकर बोला—"मानो, तो एक बात मेरी समझ में आई है।"

"क्या?"

"मानो तो बताऊँ!"

"कहो भी?"

"(धीरे से) रामसनेही के खेत तो पके-पकाए, सूखे खड़े होंगे?"

सिंभू उछल पड़ा। पके! सूखे! दो साल की अच्छी फसल! और हाँ, रामसनेही के खेतों

के दोनो तरफ सड़क और मैदान है !! सारी ऐंठ ढीली पड़ जायगी !!!

"हाँ, हैं तो !"

कुतबी ने सिंभू का भाव जान लिया। कहने लगा—"क्यों, यह कैसा है ? एक चिनगारी का काम है !"

"............"

"क्यों ?"

"है तो, पर भाई, मेरी हिम्मत इतने की भी नहीं पड़ती !"

"वाह ठाकुर ! तुम इसकी फिकर मत करो। तुम्हारी तो बस सह काफी है !"

"........."

"बस-बस, कहना-सुनना कुछ नहीं ! अब देखो, कहाँ इसकी ऐंठ जाती है, और कहाँ अखाड़ा !! आज की रात है, और मैं हूँ !!!"

"अरे नहीं, ऐसी जल्दी नहीं, जरा सोच लूँ। रात को मेरे पास हो जाना।"

"अच्छा।"

"और देखो ।"

"हाँ !"

"इस तरह आना कि कोई देखे नहीं ! समझे ?"

"सब समझता हूँ, बेफ़िकर रहो ।"

"ठीक !"

"..........."

"बस, मैं यहीं से अलग होता हूँ । कोई हमदोनो को साथ न देखे, यही अच्छा है ।"

पर कोई आदमी दिशा-फ़राग़त के लिये झाड़ी के पीछे बैठा था । उसने इनकी पिछली बातें सुन लीं, और दोनो को पहचान लिया ।

दोनो खिलाड़ी अलग-अलग रास्तों से गाँव में घुसे ।

---

(४)

उस्ताद नूरन का अखाड़ा गाँव में सब से पहले जागता है। आज वहाँ का वातावरण आरत-पूर्ण है।

सुबह से ही कई पट्ठे अखाड़ा गोड़ने और 'हरा करने' में लगे हैं। उस्तादजी सदा ही देर से आते हैं, पर आज अपेक्षा-कृत कुछ अधिक देर है।

बात क्या है?

आज उस्ताद नूरन और रामसनेही की कुश्ती है।

इतने में एक आदमी अखाड़े में पहुँचा, और सब से दुआ-सलाम की।

यह कुतबी था।

बुंदू ने कहा—"कहो भई कुतबी, शहर से कब लौटे?"

"कल ही रात को तो। घर पहुँचते ही सुबह अखाड़े में आने का उस्ताद का बुलावा पहुँचा..."

"उस्ताद का ?"

"हाँ जी, मुझे तो एक बार ताज्जुब भी हुआ। मालूम नहीं, उन्हें कैसे पता लग गया, मैं शहर से लौट आया हूँ !"

"लग गया होगा, किसी तरह ; मामूली बात है। शायद रास्ते में आते हुए देख लिया हो।"

"मुमकिन है।.. ...हाँ, आज उस्ताद की कुश्ती है ? किस से.........?"

"कुछ कुश्ती न कुश्ती का सिर-पैर यार ! उस बेईमान रामसनेही ने अखाड़ा खोला है न नया—हिंदुओं का—उसी की ज़रा आँखें खोलनी हैं। उस्ताद भी यार खाम-खाँ का मज़ाक़ किया करते हैं !"

एक दूसरा पट्ठा बोल उठा—"और उस साले ने कुश्ती मंज़ूर भी तो कर ली !......हड्डी-पसली कुल-कुलाई होंगी। हः हः हः हः !!"

कुलबी बोला—"वाक़ई यार, उस्ताद भी कभी-कभी बड़ी बेढब दिल्लगी करते हैं। कुश्ती क्या—यों कहो, उसे 'ज़ोर' कराना है।"

बुंदू ने लापर्वाही से कहा—"क्या कुश्ती, और क्या 'जोर' यार—एक चख समझो। कुछ जोड़ भी ; कहाँ शेर, कहाँ बकरी !"

उसी पट्ठे ने कहा—"ताज्जुब तो इस बात का है कि उसने मंजूर......"

टूँडू जुलाहे ने कहा—"तुम भी क्या पचड़ा ले बैठे। कुछ बात भी हो !......कुतबी शहर से आया है, जरा इसकी सर-गुजश्त तो सुनो ; क्या बीती ?··· हाँ जी, कुतबी, शहर से क्या कमाकर लाए ?"

"कैसा कमाना यार, बीस रुपए घर से ले गए थे, वह भी खतम कर आए !"

"अरे ! यह कैसे ? शहर में रोटी-रोजगार का क्या घाटा ??"

"अरे यार, इन (गाली) हिंदुओं ने मुसलमानों का सारा रोजी-रोजगार खतम कर दिया ।"

"हिंदुओं ने ? कैसे ?"

"अजी, यही लड़ाई-झगड़ा। सुसरे अपने आप तो झगड़ा खड़ा करते हैं। दोनों भाई तादाद में कम

हैं ; बस हिंदुओं के शिकार हो जाते हैं। दोनों भाई गरीब हैं, हिंदू अमीर हैं। गरीबों की सर्कार के यहाँ भी फरयाद नहीं है ; सब जगह रुपए का जोर है भाई........."

"तो रोजी किस तरह.........?"

"कहता तो हूँ।.........बस, पहले तो गरीब मुसलमानों को मारा-पीटा, पीछे से दुहाई दी, हमें मुसलमानों ने मारा, और मुसलमानों का 'बाई काट' कर दिया।"

"क्या ? 'बाई काट' ? 'बाई काट' क्या ?"

"अरे, यही ; मुसलमान मनिहारों से औरतों को चूड़ी पहनाना बंद कर दिया, मुसलमान धोबियों से कपड़े धुलाने बंद कर दिए, मुसलमान नौकरों को दूकानों की नौकरी से हटा दिया।......बस, यही 'बाई काट' !"

"बस, रोजी मर गई !"

"बस, वे लोग तो हिंदुओं से, काम कराने लगते हैं ; मुसलमान बेचारे मर जाते हैं।"

अब तक ट्ँडू ही बोल रहा था। अब बुंदू ने कहा—"तो तुम भी इसी 'बाई काट' के शिकार बने ?"

"हाँजी ; जहाँ जाऊँ, वहीं सूखा जवाब, मुसलमानों को नहीं। जी में तो बड़ा गुस्सा आता, पर करता क्या।"

"ओफ़्फ़ो ! बेचारे मुसलमानों पर ये हिंदू लोग कैसा ज़ुल्म करते हैं !"

"अजी, यहीं तक हद थोड़ा ही है। यह आरिया-समाज है न........ ?"

"हाँ !"

"इस आरिया-समाज के गुर्गे गली-गली में घूमते हैं। जहाँ किसी मज़लूम मुसलमान को देखा, फुसला कर अपने साथ ले आए। नौकरी दिलाने का लालच दिया, शादी करा देने का सब्ज़ बाग़ दिखाया, और हिंदू बना लिया ! यह भी तो ज़ुल्मों का बाबा ......"

"ओहो ! हिंदू बना लिया ?"

"हाँजी, इसका बड़ा ज़ोर है। इसी आरिया-

समाज के बहकावे में पड़कर तो हिंदुओं ने यह सुसरा 'बाई काट' शुरू किया।"

एक नए महाशय, जो अब तक कुछ न बोले थे, चुप खड़े थे, कहने लगे—"सुनते हैं, इस गाँव में भी तो आरिया-समाज का अड्डा खुलने-वाला है।"

बुंदू—"इस गाँव में भी......? आरिया-समाज का अड्डा ??......क्यों जी, यह आरिया-समाज असल में है क्या बला ? मेरी समझ में अभी तक यही नहीं आया।"

कुतबी—"अरे भाई, आरिया-समाज एक मज-हब है........."

बुंदू—"हिंदू नहीं है ?"

कुतबी—नहीं, है तो हिंदू ही, पर आरिया-समाज कहलाती है। आरिया-समाजी कहते हैं कि सच्चे हिंदू हमीं हैं........."

बुंदू—"और हिंदू झूठे हिंदू हैं ?"

कुतबी—"नहीं, ये कहते हैं कि 'हिंदू'-लफ्ज़

तो मुसलमानों का रक्खा हुआ है ; असल में सब हिंदू आरिए हैं।"

बुंदू—"अच्छा ! यह बात !!"

कुतबी—"हाँ, यह बात।...हाँ तो, ये आरिए बड़े विकट हैं। बड़े-बड़े आदमी इस आरिया-समाज में हैं। ये लोग कहते हैं—जैसे हिंदू मुसलमान बन सकते हैं, वैसे ही मुसलमान भी हिंदू हो सकते हैं !"

बुंदू—"लो सुनो, सालों की बातें ! कहीं मुसलमान भी हिंदू हो सकता है ? इस्लाम के निशानात ही ऐसे हैं, जो बदले नहीं जा सकते !"

ठूँठू ने पूछा—"क्यों जी कुतबी, क्या कोई मुसलमान हिंदू हो भी जाता है ?"

कुतबी—"अजी 'कोई' कैसे, हज़ारों-लाखों !"

ठूँठू—"हज़ारों-लाखों ? कैसे ?"

कुतबी—"बस जी, बे-रोज़गारी का सबब ! नौकरी का लालच !! शादी करा देने का सब्ज़-बाग़ !! बस, और क्या ?......भाई, मुझे भी कई ऐसे आदमी मिले थे ; मैं तो शहर से भागा—तोबा की ! मैं तो

एक वक़् रोटी खा लूँगा, पर अपना मज़हब न छोड़ूँगा।"

इस पर "वाहवा !" और "शाबाश !" सुनाई दी।

बुंदू—"हाँ जी, वह असल बात तो छूट ही गई! तो यहाँ भी आरिया-समाज खुलनेवाली है ?"

उन्हीं महाशय ने कहा—"हाँ; और यही बद-माश रामसनेही उसे चलावेगा। सुनते हैं, शहर से कुछ आरिया-समाजी आकर उस अड्डे को जारी करेंगे।"

"और मुसलमानों को हिंदू बनावेंगे ?"

"और क्या !"

बुंदू—"अजी, देखें तो, कौन माई का लाल आता है शहर से, और जारी करता है अड्डा ! मारे लाठियों के एक-एक का भेजा खोल दूँ ! हैं किस हवा में ! सालों की सब आरिया-समाजी चूतड़ों की राह निकल जायगी ! वाह ! ख़ूब रही !!......और इस साले रामसनेही को तो कहो यहीं—अखाड़े में ही—खील-खील कर दूँ ! आने दो बस्ताद को। वाह, अच्छी रही "

बात यहीं रुक गई, क्योंकि दो-तीन पट्ठों के साथ उस्ताद नूरुद्दीन का आगमन हुआ।

× × ×

नूरुद्दीन तेली मधुपुर का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति था। मालदार असामी था। बचपन से ही पहलवानी का शौक़ था। इस समय छत्तीस बरस का था। कसरती बदन, दबंग स्वभाव, रौब-दाब का स्वर। अखाड़े के एक उस्ताद के सभी गुण उसमें मौजूद थे। इस अखाड़े में हिंदू-मुसलमान सभी लोग आते थे। एक बार शहर के कुछ मुसलमान वहाँ आए। नूरुद्दीन के घर ठहरे। अखाड़े का भी निरीक्षण किया। सेंदुर से चित्रित हनुमानजी की तस्वीर एक आले में विराजमान थी। शहरी मुसलमानों ने इस पर आपत्ति की, और नूरुद्दीन को कुछ ऐसा पाठ पढ़ाया कि अगले दिन उस मूर्त्ति-चिह्न का लोप कर दिया गया।

हिंदू-पट्ठों को यह बात बुरी लगी। रामसनेही शहर की हवा खाया हुआ था। अखाड़े का पट्ठा

नहीं था, पर कसरत का शौक़ रखता था। बदन अच्छा था। बचपन में 'लड़ंत' भी काफ़ी कर चुका था। जोशीला जवान था। सुना, तो अलग एक हिंदुओं का अखाड़ा खोल दिया।

अलग अखाड़ा खुलने के आठ-दस दिन बाद नूरुद्दीन ने रामसनेही को कुश्ती का चैलेंज भेजा। जोशीले रामसनेही ने चैलेंज स्वीकार कर लिया।

उसी कुश्ती की बात है।

× × ×

उस्ताद आए। दुआ-सलाम हुई। उस्ताद झूमते-झामते आकर बैठ गए। मौक़ा पाकर कुतबी ने भी मुस्किराकर सलाम किया। उस्ताद ने हँसकर कहा—"ओहो! कुतबुद्दीन भी आ पहुँचे?"

"वाह, भला उस्ताद का हुक्म होता, और न आता?"

"हाँ, मैंने तुम्हें रस्ते में देख लिया था।...... देखो, दोपहर को ज़रा मेरे पास हो जाना।"

"बहुत अच्छा उस्ताद; किस वक़् आऊँ?"

"यही रोटी खाने के बाद ; दोपहर को।......
और, नहीं तो, रोटी घर ही आकर खाना।"

"हाँ-हाँ, रोटी तो उस्ताद को ही खाता हूँ।"

"ख़ैर, रोटी तो सबको वह रब देता है; मगर हर्ज क्या है ; वहीं खाना !"

"नहीं, मैं रोटी खाकर हाज़िर-ख़िदमत होऊँगा।"

"नहीं जी, कह भी दिया। ज़्यादा शानपती में ही आ रहा है ! अरे, हमारे सामने तो तू नंगा फिरा करता था।"

बुंदू ने कहा—"अरे कुतबी, उस्ताद कह रहे हैं ; हर्ज क्या है ? उस्ताद तो बाप के बराबर होते हैं।"

कुतबी ने कहा—"मैं दीगर कब कहता हूँ ?......
अच्छा, जैसी उस्ताद की मर्ज़ी, जैसा उस्ताद का हुक्म।"

....

उस्ताद—"अभी आया नहीं वह लौंडा राम-सनेही !"

"लंगर फट गया होगा !" एक आवाज़ !

ज़ोर की हँसी !

"बेचारे की हिम्मत कैसे पड़े !" दूसरी आवाज़ !

फिर हँसी।

"लुगाई पकड़े बैठो होगो ; डरती होगी !" तीसरी आवाज़ !

मुँह फेर-फेरकर हँसी।

पर ये सब आशाएँ ग़लत हुईं, और सब अनुमान निःसार ठहरे, जब बहुत-से गलों से निकली हुई 'महावीर हनुमान की जय' इन लोगों के कान में पड़ी।

"लो आ गया !" कहकर नूरुद्दीन खड़ा हो गया।

"लो आ गया साला आरिया-समाजी ! हाँ, उस्ताद ! सुनना।" बुंदू ने कहा।

पर इस गड़बड़ी में उस्ताद ने बुंदू की बात न सुनी।

अपने पट्ठों के झुंड में घिरा हुआ रामसनेही

आया। बहुत-से दर्शक भी थे। हिंदू-मुसलमान भी।

रामसनेही और नूरुद्दीन की चार आँखें हुईं। रामसनेही ने मुस्किराकर सलाम किया। नूरुद्दीन ने लापरवाही से सिर हिला दिया, और मुँह फेरकर थोड़ा हँस दिया।

दोनो पहलवान तैयार हो गए। सिर्फ़ पंचों के आने की देर थी। आदमी दौड़ाए गए।

पंच आए। एक हिंदू और एक मुसलमान। दोनो वृद्ध। सिर के बाल सफ़ेद, चेहरों पर दृढ़ता और तेज की रेख, आँखों में सौजन्य, सरलता और निष्कपटता, शरीर में पहलवानी की बू, और चाल में गंभीरता।

दोनो आकर बैठ गए। रामसनेही ने हिंदू-पंच के और नूरुद्दीन ने मुसलमान के पैर छुए।

तब दोनो पट्ठे लंगर कसकर, दस-पाँच बैठक और तीन-चार डंड लगाकर, अखाड़े में घुसे।

मिट्टी उठाकर चूमी और दोनों ने पंचों की तरफ़ देखकर कहा—"उस्ताद इजाजत है न ?"

संकेत हुआ। हाथ मिले। कुश्ती शुरू हुई।

नूरुद्दीन मशहूर पहलवान था। रामसनेही के जीतने की बहुत कम लोगों को आशा थी। पर जब कई मिनट बीत गए, और रामसनेही बश में न आया, नूरुद्दीन के सब दावँ वह सफ़ाई के साथ काटता गया, तो बहुतों को 'बराबर' छूटने की आशा हुई।

पर रामसनेही भारी पड़ता जा रहा था। नूरुद्दीन की साँस फूलने-सी लगी। रामसनेही के पट्ठों ने उस्ताद को बढ़ावा दिया।

नूरुद्दीन पसीने-पसीने हो गया, सारा अहंकार फुर्र ! रामसनेही की पीठ पर 'क़ैंची' डालकर बैठ गया और दम लेने लगा।

मुसलमान पंच ने ललकारकर कहा—"यह क्या नूरन, बेअसूली बात है ! हटाओ क़ैंची !"

नूरन लज्जित हो गया। क़ैंची हटानी पड़ी।

क़ैंची का छूटना था कि रामसनेही ने नूरन की गर्दन बग़ल में दबाकर कूल्हे का जो धक्का दिया, तो उस्ताद नूरन चारो शाने चित अखाड़े में लेटे थे और रामसनेही उनकी छाती पर !

'महावीर हनुमान की जय !' के निनाद से अखाड़ा गूँज उठा। मुसलमान पंच ने चिल्लाकर कहा—"शाबाश बेटे, जीते रहो ! तुम जीते, छोड़ दो !"

रामसनेही खड़ा हो गया। नूरन उठा और हाथ मिलाकर बाहर आया।

रामसनेही छाती फुलाए, गर्वोन्मत्त, अखाड़े में खड़ा रहा। उसके पट्ठे जाकर उससे लिपटने और जय-जयकार करने लगे।

रामसनेही ने चिल्लाकर कहा—"बोलो, महावीर हनुमान की जय ! गरूर का सिर नीचा !!"

चारो तरफ़ से आवाज़ आई—"गरूर का सिर नीचा !"

हिंदू-पंच ने ललकारकर कहा—"ख़ामोश ! क्या वाहियात बकते हो !!"

नूरुद्दीन की क्रोधाग्नि में घी पड़ गया। हिंदू-पंच की डपट उसने काफ़ी न समझी, और रामसनेही के सामने आकर कहा—"अबे, अनाड़ी! क्या बकता है तू! इसमें गरूर का क्या सवाल है? यह तो दाँव है—पासा पड़े, अनाड़ी जीते।...बेईमान, तुझे शर्म नहीं आती!"

रामसनेही ने कुछ न कहा; मुँह फेरकर मुस्किरा पड़ा, पर उसके एक पट्ठे से न रहा गया, और वह तमककर बोला—"मियाँ, ज़बान सँभालकर बातें करो। शर्म आवे तुम्हें। बने फिरते हैं साहब पहल-वान कहीं के! बाप न मारे पीदड़ी, बेटा तीरंदाज़!"

क्रोध से काँपता हुआ नूरन इस छोकरे की बद्-ज़बानी का मज़ा चखाने के लिये उसकी तरफ़ बढ़ा, पर कहनेवाला ग़ायब हो चुका था!

इतने में उसके कई पट्ठों ने नूरन को पीछे खींच लिया।

नूरन ने पीछे हटते हुए सक्रोध कहा—"सालो, एक-एक को मज़ा न चखाया, तो नाम नूरुद्दीन नहीं!"

एक आवाज़ आई—"वह 'नाम नूरुद्दीन' ही तो अखाड़े में लंबा लेटा हुआ था! बोलो, नूरुद्दीन की फुर्र !!"

नूरुद्दीन का बस चलता, तो रामसनेही को उसके पट्ठों-समेत कच्चा चबा डालता! पट्ठों के समझाने-बुझाने से हटा और क्रोध, अपमान, क्षोभ और दुःख से जर्जरित, कपड़े पहनने लगा।

रामसनेही और उसके पट्ठे हँसते-कूदते, चिल्लाते चले गए।

टूँडू ने कहा—"अजी, वह क़ैंची लेकर उस्ताद ने ऐसी बढ़िया फाँस लगाई थी कि मुआ वहीं टिमाटर हो जाते! वह तो मीर साहब के कहने से......"

बुंदू ने कहा—"अजी देखो तो, एक-एक साले की अक़ल दुरुस्त कर दूँगा। और उस्ताद का इशारा होता, तो इस रामसनेही का तो यहीं बक्कल उधेड़ देता!"

नूरन ने क्रोध से काँपते हुए कहा—"सब सालों को गोली से उड़ा देना चाहिए!"

एक महाशय बोले—"अजी, यह भी कोई कुश्ती

थी ! किसी दिन मैदान में इस साले रामसनेही को मैं ललकारूँगा ; उस्ताद को बात दूर है !"

कुतबी भी जोश में आ रहा था। चिल्लाकर बोला—"इस रामसनेही को मैं ग़ारत करूँगा ! वक़्त नज़दीक है !"

इस निश्चय में क्या था, और होना क्या था—यह कौन जाने ?

नूरुद्दीन ने चौंककर कुतबी का तरफ़ देखा और कहा—"कुतबी, दोपहर को रोटी घर ही पर खाना ; भूलना मत !"

---

(५)

दुर्गा आँगन में बैठी थी। बालक घनश्याम सामने खेल रहा था। अचानक मा ने पुकारकर कहा—"अरे, घनश्याम रे !"

बेटे ने खेल से मन हटाकर मा की तरफ़ मुँह फिराया। मा बोली—"अरे, अब मनोहर कहाँ रहता है ? तुझे कभी मिलता है या नहीं ?"

घनश्याम ने अपने बाल-सुलभ स्वर में उत्तर दिया—"उस दिन जो लड़ाई हो गई थी, उसके पीछे एक दफ़ा मिला था।"

"फिर ?"

"जब मैंने पूछा—'अब घर खेलने क्यों नहीं आते ? तो उसने कहा—मा ने मना किया है। अब हम तुम्हारे घर नहीं आवेंगे; न तुम्हारे साथ खेलेंगे; न तुमसे बोलेंगे।' फिर मुझे वह नहीं मिला।"

"तैने पूछा नहीं, क्यों नहीं आवेगा ?"

"पूछा था।"

"फिर क्या कहा ?"

"कहने लगा—'काका ने हमारी मा को पीटा है, इसलिये हम तुम्हारे घरवालों से नहीं बोलेंगे !' क्यों मा, क्या सचमुच काका ने चाची को मारा था ?"

दुर्गा बुद्धिमती थी। बच्चों के कोमल हृदय पर वह किसी विषम भावना की छाप लगाना नहीं चाहती थी। ऐसी स्थिति में उसने झूठ बोलना बुरा न समझा—"नहीं भैया, यह सब झूठ बात है। भला कहीं मरद औरतों को पीटा करते हैं ?"

"तो मा, क्या मनोहर झूठ बोलता था ?"

"नहीं, किसी ने उसे बहका दिया होगा।"

"ओ हो ! यही बात है।"

थोड़ा ठहरकर दुर्गा ने कहा—"अब की मिले, तो उसे मना-मुनूकर अपने साथ यहाँ लाना।"

घनश्याम अपने खेल के क़ीमती वक़्त को बातों

में खोना नहीं चाहता था। उसने संक्षिप्त उत्तर दिया—
"अच्छा !"

× × ×

दूसरे दिन !

"अरी मा री !"

"हाँ !"

"मनोहर मुझे मिला था।"

"फिर ?"

"मैंने बहुतेरा मनाया। पहले तो आने को राज़ी ही नहीं हुआ। कहने लगा—'तुम्हारे बापू ने हमारी मा को पीटा है। तुम्हारी मा हमें मार डालेगी। हम तुम्हारे घर कभी नहीं जायँगे।' आख़िर जब मैंने बहुत कहा, तो कहने लगा—अच्छा, आज मा से पूछेंगे ; उसने कह दिया, तो कल तुम्हारे यहाँ चलेंगे। बस मैंने......"

"अरे, पागल ! यह क्या किया !!"

"क्यों ?"

"अरे, जा, दौड़ा-दौड़ा जा ; जो अभी वह बाज़ार

में ही खेल रहा हो, तो उससे कह आ—'मा से कहने की जरूरत नहीं है। डरने की कोई बात नहीं है। मा को खबर नहीं होगी। चल, चाची बुला रही हैं।' जा, भाग जल्दी !"

घनश्याम बड़ी उमंग से अपनी अर्द्ध सफलता मा को सुनाने आया था। पर मा का ऐसा व्यवहार देख, उसकी उमंग ठंडी पड़ गई। बेचारा उलटे पाँव दौड़ा।

इधर दुर्गा ने सोचा—सरूपी का कैसा खराब दिमाग है। अव्वल तो द्यौर-जिठानो की लड़ाई ही क्या ? और जो हो भी, तो बालकों से उस लड़ाई का क्या संबंध ! अभी से इन बालकों के जी में द्वेष और शत्रुता का भाव भर देना कहाँ की बुद्धिमानी है ? पता नहीं, विधाता ने इसे कैसा सुभाव दिया है !

घनश्याम मुँह लटकाए लौट आया। आकर बोला—"मनोहर तो कहीं नहीं मिला ; शायद घर ही गया होगा, मा से पूछने।"

दुर्गा ने चिल्लाकर कहा—"क्यों रे ! मैंने तुझसे कब कहा था कि तू उसे मा से पूछने जाने दीजियो ?"

दुर्गा का प्रश्न बड़ा बेढंगा था। बच्चा घनश्याम उसका क्या उत्तर दे ?

दुर्गा भी अपने प्रश्न की निस्सारता समझ गई। क्षुभित होकर बोली—"जा, यहाँ से ! मूर्ख !"

घनश्याम हट गया। उसके हृदय में जिस जिज्ञासा, जिस अपमान और जिस क्रोध का तूफ़ान उठा, वह वही जाने। पर मा-बाप के सामने उद्दंड होने की न उसे शिक्षा मिली थी, न हिम्मत पड़ी।

जब थोड़ी देर में दुर्गा यह बात भूल गई, तो घनश्याम ने मौक़ा पाकर मा से पूछा—"मा, क्या हर्ज हो गया ?"

"कैसा हर्ज ?"

"जो मनोहर अपनी मा से पूछने चला गया, तो क्या हर्ज हो गया ?"

"नहीं बेटा, इस बात को वहाँ तक पहुँचाने से कोई फ़ायदा नहीं था।"

बालक कुछ देर चुप रहा। फिर डरते-डरते बोला—"अच्छा मा, एक बात बताओ।"

"क्या ?"

"सच बताओगी ?"

"क्या ?"

"मेरी कसम खाओ।"

"नहीं बेटा, कसम नहीं खाया करते हैं। क्या बात है ?"

"मा, मैं यह पूछता हूँ कि काका ने क्या सचमुच चाची को पीटा था ?"

दुर्गा का मुँह सफ़ेद हो गया। कहने लगी—"नहीं तो, तुमसे अभी तो कहा !"

"अच्छा, तो फिर मनोहर की चाची से पूछने में क्या हर्ज है ?"

बच्चे का तर्क देखकर दुर्गा दंग रह गई। उसके सिर पर हाथ फेरती हुई मन-ही-मन कहने लगी—"वाह ! आखिर है तो मेरा बेटा ही, क्यों न हो !... मेरा बेटा बड़ा भारी बुद्धिमान् होगा !"

पर भाग्य खड़ा हँसता था !

बेटे ने फिर पूछा—"हाँ मा, बताती क्यों नहीं ?"

"क्या बताऊँ ?"

"यही।"

मा को कोई उत्तर नहीं सूझ रहा था। अब उसकी रक्षा का क्या उपाय था ?

इसी समय बाहर शोर-गुल की आवाज आई। घनश्याम के कान खड़े हो गए। पहली जिज्ञासा उसकी लुप्त हो गई, और शोर-गुल का कारण जानने के लिये वह पलक-झपकते मा की गोदी से फुर्र हो गया।

थोड़ी देर बाद झूमते-झामते रामसनेही ने घर में प्रवेश किया। घनश्याम भी बाप की उँगली पकड़े किलकारी मारता और उछलता आ रहा था। राम-सनेही ने दूर से ही कहा—"ले खिला मिठाई; मारा नूरन को !"

घनश्याम ने भी पिता की बात दुहराई—"ले खिला मिठाई, मारा नूरन को !"

दुर्गा ने सिर का पल्ला नीचा कर लिया, और बेइख्तियार मुस्किरा पड़ी।

उसके मुख को तोल करना हमारे बस का काम नहीं!

× × ×

रोटी खाकर कुतबी और नूरन आमने-सामने बैठे।

पहले नूरन ने बात चलाई—"हाँ भई, तो शहर में क्या बीती तुम पर?"

"कुछ न पूछो उस्ताद, बेड़ा ग़र्क हो, इन हिंदुओं का! बस, क्या कहूँ; कहते शर्म आती है!"

"आखिर क्या हुआ? कोई हिल्ला (रोज़गार) नहीं मिला?"

"अजी, हिल्ले की क्या कमी? पर इन हरामजादे आरिया-समाजियों ने हिंदुओं को ऐसा भड़काया है कि मुसलमानों को मज़दूरी तक के लाले पड़े हुए हैं।"

"अच्छा! यहाँ तक?"

"हाँजी, यह हाल है कि अगर झल्लीवाले को

भी ज़रूरत हो, तो दो घंटे खड़े रहना, और ज्यादा मज़दूरी देना तो मंज़ूर, मगर मुसलमान को बोझ नहीं देंगे।"

"हूँ !!"

"और देखिए; इन बदमाशों पर खुदा की मार—बेचारे ग़रीब मुसलमानों को झाँसा-झप्पा देकर हिंदू बना लेते हैं।......यह सब इन्हीं आरिया-समाजियों की करतूत है।"

"यह तो मैं भी सुन चुका हूँ। ये खबरें सुनकर मेरी रगों का खून उबलने लगता है। जल्द ही मैं इस तरफ़ तबलीग़ का इस्लामी झंडा खड़ा करनेवाला हूँ। शहर के तबलीग़ी कारकुनों से बातचीत हो रही है।.........मेरी ख्वाहिश तो भाई, अपनी ज़िंदगी पाक इस्लाम को बख्श देने की है।"

"वाह, उस्ताद! आपकी जितनी तारीफ़ की जाय, थोड़ी है। आप ही-जैसे मज़हब-परस्त बहादुरों की बदौलत तो इस्लाम का नाम-निशान इस हिंदू-मुल्क में—दाँतों के बीच ज़बान की तरह—मौजूद है।...... तो

आप यहाँ क्या तबलीग़ का काम शुरू करना चाहते हैं ?"

"हाँ, इधर देहातों में तबलीग़ का काम ख़ूब ज़ोर के साथ शुरू होने की उम्मीद है। मुझे उम्मीद कामिल है कि पूरी कामयाबी मिलेगी। इस तरफ़ हज़ारों चमार और भंगी पाक इस्लाम के झंडे के नीचे आने को तैयार हैं।"

"ठीक है ! तभी.........!"

"तभी—क्या ?"

"आपने नहीं सुना ?"

"क्या ?"

"यह बदमाश रामसनेही इस गाँव में आरिया-समाज का अड्डा क़ायम करना चाहता है।"

"अच्छा ? क्या वाक़ई ?"

"आपसे ग़लत कह सकता हूँ, उस्ताद ?"

"हूँ !......तब तो इस काफ़िर को हलाल करने से दोचंद सवाब हासिल होगा !"

"...............".

"अच्छा, मगर यह तो बताओ, सिंभू ने रात को क्या कहा ?"

कुतबी का चेहरा फक़ ! सिंभू ने ? सिंभू की बात इन्हें कैसे मालूम हुई ?

नूरन हँसा। कहने लगा—"भाई, गाँव में पत्ता खड़कता है, तो मुझे पता चल जाता है। मुझे सब कुछ मालूम है।...हाँ, क्या कहा सिंभू ने ?"

"........मगर उस्ताद, आपको कैसे मालूम हुआ ?"

"फिर वही ! अरे भाई, तंत की बात यह है कि मुझे गाँव में पत्ता खड़कने तक की खबर रहती है। बताओ, क्या सलाह हुई रात को ?...... बुलाया था न तुम्हें उसने ?"

कुतबी ने आत्म-समर्पण कर दिया ; कहा—"उस्ताद ! मानता हूँ तुम्हें।...लो तुमसे क्या छिपाव है ; बात यह थी कि कल मैं शहर से लौट रहा था, तो सिंभू मिल गया।"

"फिर ?"

"उसने बातों-बातों में ज़ाहिर किया कि राम-सनेही ने उसकी औरत पर हाथ उठाया, इससे दोनों में रंजिश-सी हो गई है।"

"हाँ।"

"आप जानते हैं—मैं भी कट्टर मुसलमान हूँ; शहर में बहुत-से आरिया-समाजियों ने मुझे चंग पर चढ़ाना चाहा, शादी का लालच दिया, रोज़गार दिलाने का लोभ दिखाया, पर मैंने मंजूर न किया। जान देनी मंज़ूर, मगर......"

"ठीक है; शाबाश! असल बात कहो।"

"बस तो मैंने सोचा—इन दोनों की लड़ाई से फ़ायदा उठाया जाय!"

"ठीक! फिर?"

"आपसे क्या छुपाना उस्ताद; मैंने उसे राम-सनेही के ख़िलाफ़ भड़काया!"

"ख़ूब किया!"

"हाँ, मैंने कहा—'तुम्हें इसका बदला लेना चाहिए।' आप जानते हैं, यह सिंभू साला है तो

चौहान, पर बनियों से भी ज्यादा बुजदिल है। बहुत ऊँच-नीच समझाने से आखिरकार मेरी राय पर रजामंद हुआ !"

"क्या राय ?"

कुतबी ने उस्ताद के पास सरककर धीरे से कहा—"मैंने कहा—'इस साले रामसनेही के खेत में आग......। तुम्हारी हिम्मत न हो, तो मुझसे कहो, मैं सब कम ठीक...।'......।"

"राजी हो गया ?"

"हाँ, एक दफा तो राजी हो ही गया था ; पर बड़ी मुश्किल से।...लेकिन जब गाँव नजदीक आ गया और हम दोनो जुदा होने लगे..."

'...तो उसने कहा—'जरा रात को मेरे पास हो जाना।' क्यों ?"

कुतबी ने अचरज से कहा—"ठीक है उस्ताद, यही कहा था। तुम्हें कैसे मालूम हुआ "

"फिर वही बच्चापन ! बीस दफा कहा—पत्ता खड़कने तक की खबर यहीं बैठे पा लेता हूँ ! समझे ?"

नूरन यह कहकर मोछों पर ताव देने लगा।

कुतबी ने भक्ति-भाव से उस्ताद के पैर छुए, और हाथ जोड़कर कहा—"वाह वा, वाह! क्यों न हो! आखिर उस्ताद उस्ताद ही हैं!!"

नूरन ने हँसते हुए कहा—"अच्छा, बस, यार! बहुत तारीफ़ हो ली! पहले बात तो खत्म करो।...तो रात को तुम सिंभू के घर गए?"

"क्यों नहीं जाता उस्ताद? जानते हो, मुझे तो लौ लगी हुई थी—कैसे इन दोनो की भिड़ंत हो, और कैसे इस सुसरी आरिया-समाज का नास हो!"

"ठीक है, ठीक है, क्यों न हो! शाबाश!!"

"शाबाशी की क्या बात है उस्ताद; आप जानते हैं—मैं तो अपनी जिंदगी इस्लाम की ही नज़र समझता हूँ। मेरा क्या है—आगे नाथ न पीछे पगहा—मज़हब की जो ख़िदमत हो जाय..."

"...ठीक है; हाँ, तो तुम रात को गए, तो क्या तय पाया?"

"कुछ नहीं उस्ताद; सब किया-कराया फ़िजूल हो गया। साला, बड़ा डरपोक, बुज़दिल निकला..."

"क्या! इनकार कर दिया?"

"हाँ जी, बहुतेरा समझाया, बहुतेरी ऊँच-नीच सुझाई, पर वह बंदा टस से मस नहीं हुआ!"

"क्या कहने लगा?"

"कहता क्या? असल बात तो यह थी कि रामसनेही के डर से उसका पेशाब खता होता है। मगर यह बात तो वह साफ़-साफ़ कह नहीं सकता है; न करने के और सौ बहाने!"

"आखिर कोई बहाना बनाया भी होगा!"

"अजी बहाना क्या! कहने लगा रामसनेही मेरा भाई है। अगर उसने बेवक़ूफ़ी की, तो मैं बेवक़ूफ़ी नहीं करूँगा। मेरा-उसका चोली-दामन का साथ रहा है।...उसने मुझ पर हज़ारों तरह के अहसान किए हैं। ...वग़ैरा- वग़ैरा।"

"धत्तेरे बुज़दिल की दुम में रस्सा! ...तो तुम्हारी बात नामंज़ूर कर दी?"

"'फ़तई नामंजूर जी, मैंने तो कहा था—'इशारा करना तुम्हारा काम ! काम करना मेरा काम !, इस पर भी (गाला) राज़ी न हुआ ।"

"ओफ्फो ! कैसे-कैसे दो कौड़ी के आदमी दुनिया में मौजूद हैं !!"

"क्या कहूँ उस्ताद, तैश तो मुझे भी बहुत आया, पर कर क्या सकता था ?"

"ठीक है जी, तुम क्या कर सकते थे ? लड़ाई तो उसी की थी, तुम्हारी थोड़ा ही ?"

"बस, उस्ताद, लाचार होकर, मन मारकर चला आया ।"

"............"

"............"

"मगर क़ुतबी, इस बदमाश को मज़ा तो ज़रूर चखाना चाहिए ।"

"किसे ? सिंभू को ?"

"नहीं ; रामसनेही को ।"

"हाँ उस्ताद, ख़याल तो मेरा भी ऐसा ही है...।

और आज सुबह से तो मैं इसकी जान का दुश्मन हो गया हूँ।"

"तो तुम्हारी समझ में इसे क्या सज़ा देनी चाहिए?"

"देखो उस्ताद" कुतबी ने दार्शनिकों का-सा तर्क-पूर्ण उत्तर दिया—"सज़ा सज़ा है; चाहे वह रत्ती-भर हो, चाहे सेर-भर। सज़ा देने से कुछ सज़ा देनेवाले का फ़ायदा तो होता ही नहीं; मतलब तो सिर्फ़ इतना होता है कि उस पर यह ज़ाहिर हो जाय कि देख, हमारी हैसियत को पहुँचने की तेरी बिसात नहीं है। हम बड़े हैं; तू छोटा है, हममें तुझे सज़ा देने की ताक़त है।...इसलिये सज़ा ज़रूर मिलनी चाहिए—चाहे वह भारी हो या हल्की!"

नूरन कुछ देर सोचता रहा। फिर बोला—"मेरी समझ में ऐसे खतरनाक आदमी को ज़िंदा नहीं रहने देना चाहिए। क्यों?"

कुतबी चौंका। बोला—"मगर सज़ा बहुत सख्त है!"

नूरन मुस्किराया। कहने लगा—"हाँ, है तो। फिर ?"

"सजा इससे हल्की होनी चाहिए।"

"तो फिर जो तुम्हारी ख़्वाहिश है, वही सही।"

"मेरी क्या ख़्वाहिश... ?"

"यही कि खेत में...।"

कुतबी का चेहरा खिल उठा। बोला—"उस्ताद, तुम्हारी राह है ?"

नूरन आँख दबाकर बुरी तरह मुस्किराया।

"बस ठीक है उस्ताद," कुतबी कहने लगा—"करना मेरा काम ; बचाना आपका काम।"

"पागल है ! यह भी कहने की बात है ?"

"बस ठीक है, उस्ताद, मुझे तो तुम्हारा ही भरोसा है।"

नूरन ने बड़प्पन की लापर्वाही से कहा—"बस, बस, हो गया ! ज्यादा तारीफ़ के पुल नहीं बाँधते हैं। जा, ख़ुदा का नाम लेकर चखा दुश्मन को मज़ा !"

कुतबी ने आख़िरी बात कही—"बात यह है

उस्ताद, अभी तो यह मामूली-सा धक्का लगाकर इस हरामजादे की आँखें खोल दी जायँ। इसके बाद भी अगर इसकी अक़ल दुरुस्त न हो, तो देखना—मेरी लाठी होगी, और उसका सिर! क्यों उस्ताद, कैसी कही?"

कुतबी ने यह कहकर धृष्टता-पूर्वक दाँत निकाल दिए।

नूरन ने कहा—"ठीक कहा, ठीक कहा! शाबाश! जाओ; देखें कैसी खूबी से अपना काम सरंजाम देते हो! जाओ, शाबाश!"

नूरन ने यह कहकर कुतबी की पीठ ठोंक दी।

कुतबी चला गया, तो नूरन वहाँ बैठकर किसी सोच में डूब गया। ज़रा देर बाद ही उसका चेहरा सुर्ख हो गया, आँखें जलने लगीं और होंठ काटता हुआ वह आप-ही-आप बोला—"साला, बदनसीब! जल में रहकर मगर-मच्छ से बैर करने चला है!"

---

(६)

कुतबी जब सिभू के घर से नाकाम लौटा, और सिभू दरवाजा बंद करके कोठे में आया, तो सरूपी ने कड़ककर कहा—"तुम मर्द हो ?"

"क्यों ?"

"तुम्हें सरम नहीं आती ! सारा गाँव तुम पर थू-थू कर रहा है, और तुम्हारे कान पर जूँ नहीं रेंगती ! एक गैर आदमी तुम्हें इतनी मदद देने को तैयार है, फिर भी तुममें उस चांडाल से बदला लेने की हिम्मत नहीं है !"

"हिश्......पगली......!"

"बस, जीभ सँभालकर बात करो ! ऐसी-ऐसी सुनकर भी तुम मुझे मुँह दिखाने चले आए ! कुतबी ने इतना कहा, तो भी न पसीजे ! धिक्कार है तुम्हें ! तुमने अपने बड़ों के नाम को कलंक लगा लिया !"

"देख, कहता हूँ—चुप रह !......इस सुसरे बड़-मास की बातों में आकर भाई का गला काट देता, तो कलंक नहीं लगता क्या ?......"

"बस, ज्यादा बकवाद मत करो। देख ली तुम्हारी बहादुरी !......तभी तो तुम्हारी मा-बहनों को मुसलमान छीन ले गए, जब तुम्हारे-जैसे नामरद पैदा हुए। थू है तुम पर......!"

"ज्यादा जबान चलाई, तो हरामजादी की नाक काट लूँगा; आई समझ में ? सुसरी छिनाल......!"

"आ मरे, देखूँ कैसे नाक काटता है। आ, आज करूँ तेरी कपाल-किरिया। ऐसी सुहागन से तो मैं राँड ही भली !"

सिभू ने आगे बढ़कर सरूपी की चोटी पकड़ ली, और घसीटता हुआ कोठे के बाहर ले आया, और तब एक बाँस का डंडा उठाकर अंधाधुंध उसे पीटने लगा।

सरूपी "हाय मरी! हाय मरी!" कहकर चिल्लाने लगी।

मारते-मारते जब सिभू के हाथ दुख गए, तो

डंडा उसने परे फेंका, सरूपी को चौक में छोड़ा, और कोठे में घुसकर किवाड़ बंद करके सो रहा।

रात को जोर की बारिश हुई, फिर हवा चलने लगी। सरूपी बेहोश चौक में ही पड़ी रही, वर्षा और पवन उस पर अपना हमला कर गए, और सिंभू ने रात-भर कोठे का दर्वाज़ा न खोला।

सिंभू सुबह कोठे से बाहर आया, तो सरूपी को अस्त-व्यस्त दशा में चौक में पड़ी पाया। एक बार धक् से रह गया। उसे आशा थी कि बारिश होने पर वह दालान में आ गई होगी। चैत का महीना था, और कोई डर बारिश से था नहीं। उसने सोचा था, इतनी मार और रात-भर की जाग, सरूपी को महीना-दो-महीना शांत रखने को काफी होगी।

पर अब—अपनी आशा के प्रतिकूल—उसे बे-होश चौक में पड़े देखा, तो उसे बड़ी चिंता हुई। पास जाकर पुकारा—"सरूपी ! सरूपी !!"

जब उत्तर न मिला, तो उसने बड़ी मुश्किल से पली

की अवसन्न देह उठाकर चारपाई पर डाली, और कपड़ा उढ़ाकर सिरहाने बैठ गया।

"...............”

किसी की पुकार सुन पड़ी। सिंभू बाहर आया। कोई किवाड़ों में धक्का मार रहा था। सिंभू और सरूपी का नाम ले-लेकर पुकार रहा था।

सिंभू ने पहचाना, पड़ोस की विधवा ब्राह्मणी भगवानदेई थी।

सिंभू ने जाकर दर्वाजा खोला। बूढ़ी भगवानदेई भीतर आकर बोली—"क्या हुआ रे, क्यों मारा, रात बहू को ?"

सिंभू दुःखी होकर बोला—"चाची, जान पड़ता है, मेरे बुरे दिन आ गए।"

सिंभू यह कहकर रोने लगा।

भगवानदेई ने मैले अंचल से सिंभू के आँसु पोंछे, पुचकारकर बोली—"क्यों बेटा, क्या हुआ ? पागल कहीं का ! मर्द होकर रोता है। बहू कहाँ है ? लड़का (मनोहर) कहाँ है ?"

सिंभू ने कुर्ते से आँसू पोंछते हुए कोठे की ओर संकेत कर दिया।

भगवानदेई कोठे में घुस गई। सिंभू भी पीछे-पीछे गया। भगवानदेई ने ज़रा-सा लिहाफ़ हटाया, और पुकारा—"सरूपी! बेटी सरूपो!!"

सरूपी ने क्षीण स्वर में कहा—"हाँ!"

"कैसा जी है बेटी?"

"चाची, मरने को पड़ी हूँ; बचूँगी नहीं।"

"पगली है!" भगवानदेई ने लिहाफ़ ढक दिया और सिंभू से बोली—"हाँ रे, क्या हुआ?"

सिंभू आँखें पोंछता रहा। कोई उत्तर उसे न सूझा।

इतने में सिंभू की खाट पर सोया हुआ बच्चा रोया। भगवानदेई ने उसे गोद में उठा लिया, और चुप कराते हुए सिंभू से कहा—"हाँ रे, क्या हुआ? बोलता क्यों नहीं?"

सिंभू फिर भी कुछ न बोल सका।

तब भगवानदेई उसका हाथ पकड़े बाहर आई,

और कहने लगी—"क्या बात हुई रे? मुँह से तो बोल!......क्या बहुत मार बैठा?"

"क्या कहूँ चाची, मैं मर जाऊँ, तो सब झगड़ा मिट जाय!"

"पागल हुआ है! घर-घर मटियाले चूल्हे हैं! लड़ाई-झगड़ा किसके घर में नहीं होता?......बता तो सही, ज्यादा मार-पीट कर बैठा क्या?"

सिंभू मुँह से कुछ न कह सका, पर भगवानदेई ने अपने प्रश्न का उत्तर सिंभू का मुँह देखकर पा लिया। बेचारी ने उसी वक्त आग जलाकर हल्दी-चूना गरम किया और सिंभू से बोली—"तू लौंडे को लेकर ज़रा बाहर चला जा, मैं........"

बात समाप्त होने के पहले ही सिंभू चला गया।

घर से निकलकर थोड़ी दूर गया होगा कि किसी ने पीछे से कहा—"सिंभू भैया! कहाँ चले?"

सिंभू ने पलटकर देखा—बलदेव है।

बलदेव सिंभू की बिरादरी का है, और समवयस्क है।

सिंभू ने कहा—"कहीं नहीं, यों ही ज़रा घर से निकल आया। राज़ी तो हो ?"

"हाँ, सब तुम्हारी दया है। क्या नूरन के अखाड़े की तरफ़ चल रहे हो ?"

"नहीं तो ; क्यों वहाँ क्या है ?"

"अरे ! तुम्हें पता नहीं ? आज रामसनेही और नूरन की कुश्ती है।"

"कुश्ती है ?"

"हाँ, सारे गाँव में परसों से यही चर्चा है। तुम्हें पता नहीं ?......अच्छा अब तो पता हो गया। चलते हो कुश्ती देखने ?"

"नहीं भाई, मुझे कुश्ती लड़ना और देखना कैसे सूझे.........।"

"क्यों ? क्यों ?"

"तुम्हारी भाभी बीमार है। भाई, उसी झंझट में पड़ा हूँ।.........अच्छा राम-राम ; जाता हूँ, बहुत देर हो गई। तुम जाओ, देखो कुश्ती.........।"

उत्तर की बाट देखे बिना सिंभू बच्चे को गोद में लिए

हुए वापस घर को चला। रास्ते में सोचने लगा—एक रामसनेही है। जो खाता-पीता है, और मौज मारता है। एक मैं हूँ, जो खाता भी हूँ, पीता भी हूँ, और दिन-रात मुसीबत में गिरफ्तार रहता हूँ। मैं किसी बात में रामसनेही से कम नहीं हूँ, तो भी मेरा जीवन उसके मुकाबले में कितना दुःख-पूर्ण है! क्यों दुःख-पूर्ण है? जब उसके मन में यह प्रश्न उठा, तो आप-ही-आप सरूपो और दुर्गा का स्वभाव उसके सामने आ गया!

सिंभू आप-ही-आप बोल पड़ा—"अच्छा है, मरे भी कंबख्त; जान पर से एक मुसीबत दूर हो!"

घर में घुसा। भगवानदेई आहट पाकर, हल्दी-चूने की खाली कटोरी लिए हुए कोठे से बाहर आई। कहने लगी—"सिंभू, तैंने बड़ा बुरा किया। ऐसी निर्दयता से गाय-भैंस को भी नहीं मारा जाता। बेचारी की हड्डी-हड्डी कसक रही है। पराई बेटी पल्ले बाँधी है, तो क्या इस तरह उसकी जान लेने के लिये?"

सिंभू कुछ कची-पक्की कहने को हुआ, पर 'चाची' का बहुत अदब करता था; चुप रह गया।

चाची ने कहा—"कमर और छाती में बड़ी चोट आई है। दोनों हाथ सूज गए हैं। जाँघों पर मोटे-मोटे नील पड़ गए हैं। तकलीफ के मारे बोला नहीं जाता है।......तैने बड़ा गजब किया!"

सिंभू चुप! मानो मानता है, उसने बड़ा गजब किया!

चाची ने कहा—"जा, देख, जरा उसे ढाढस दे, बेचारी जभी से बराबर रो रही है!"

सिंभू एक बार जाने को हुआ, फिर शर्माकर कहने लगा—"चाची, तुम्हीं जाओ, तुम्हारे सामने ढाढस-वाढस देना मेरा काम नहीं।"

चाची ने झिड़ककर कहा—"अरे, अदब-कायदा तो पीछे हो जायगा, पहले जाकर उसे देख तो ले। जा, जल्दी जा।"

गोद के बच्चे को चाची को देकर सिंभू कोठे में गया। स्त्री की खाट के पास जाकर पुकारा—"मनोहर की मा!"

मनोहर की मा ने कुछ जवाब न दिया।

सिंभू ने पतला चद्दर ज़रा-सा हटाया। सरूपी 'हाय !' कह उठी। सिंभू ने धीरे से कहा—"कैसा जी है ?"

कुछ उत्तर नहीं।

तीसरी बार वही प्रश्न किए जाने पर सरूपी ने लंबी साँस ली, और रोते हुए चीण-स्वर में कहा—"बस, अब तो अगले जनम में 'जी' पूछना।"

सिंभू के हृदय में मानो किसी ने ज़ोर से चुटकी भरी! कुर्ते से आँखें पोंछते हुए कहने लगा—"क्या बात है ? कैसा जी है ?"

सरूपी ने ज़ोर से 'हाय' की, और कहा—"बस, अब न बचूँगी। तुमने जो कुछ किया, अच्छा किया!"

सिंभू ने घबराकर कहा—"क्या हकीमजी को बुलाऊँ ? बहुत ज़्यादा लग गई ?"

सरूपी ने कहा—"नहीं, हकीमजी क्या करेंगे ! मैं अब न बचूँगी ! ज़रा मनोहर को दिखा दो।"

सिंभू ने बाहर आकर भगवानदेई से कहा—"चाची, ज़रा लौंडे को उसके पास ले जा।"

चाची ने हल्दी-चूने की एक कटोरी और तैयार कर ली थी। बच्चे को गोद में लिए भीतर चली गई।

सिंभू बहुत देर तक बाहर दालान में बैठा रहा। कभी अपने आपको धिक्कारता था, कभी रामसनेही पर दाँत पीसता था, और कभी सरूपी पर ही सारा दोष मढ़ता था।

भगवानदेई ने बाहर आकर धीरे से कहा—"सिंभू! बहू को चोट बहुत ज्यादा आई है। परमात्मा खैर करे!"

सिंभू ने घबराकर कहा—"क्या करूँ चाची?... श्यामपुर से हकीमजी को लाऊँ?"

भगवानदेई ने उछलकर कहा—"हाँ-हाँ, उन्हीं को ला।......बहू बचानी है, तो दौड़-धूप करके बचा ले।"

सिंभू ने चादर कंधे पर रक्खी, लाठी उठाई और उसी दम चल दिया।

श्यामपुर चार कोस था। सिंभू नाना प्रकार की चिंताओं में डूबता-उतराता, तेजी से चलता हुआ वहाँ पहुँचा। श्यामपुर के हकीमजी चारों तरफ़ के

गाँवों में खूब प्रसिद्ध थे। सिंभू हकीमजी के घर पहुँचा, तो यह सुनकर उसकी निराशा की हद न रही कि हकीमजी एक दूसरे गाँव में किसी रोगी को देखने गए हैं।

हारकर वहीं ठहर गया। कई घंटे बैठना पड़ा। हकीमजी दोपहर को लौटे। सिंभू ने अपनी विनय सुनाई। हकीमजी भूखे और थके थे। उन्होंने दोनो में से एक का प्रतीकार किए विना चलना अस्वीकार किया। भूख ज्यादा जरूरी थी। झटपट खाने से निबट, हकीमजी दवाओं का टीन सिंभू के सिर पर रखकर उसके साथ चले।

रोगी को देखा। बुरी हालत थी। सरूपी बेहोश थी, और बक-झक कर रही थी। शरीर पर जगह-जगह हल्दी-चूना पुता हुआ था, और चेहरा खून से भीगा हुआ था, और खाट के नीचे रक्खा हुआ एक मिट्टी का पात्र खून से चौथाई भरा हुआ था।

सिंभू आश्चर्य और भय से रोमांचित हो उठा।

"तुम्हारे जाने के बाद इसे कई बार खून की क़ै हुई है।"

भगवानदेई ने सिंभू को उस खून का रहस्य समझाया।

सिंभू के मुँह से एक स्पष्ट 'हाय' निकली।

हकीमजी ने सब कुछ देखा-पूछा, फिर सिंभू से धीरे से कहा—"जालिम, तैने इसे मार डालने में कसर नहीं रक्खी है!"

सिंभू सिर झुकाए खड़ा रहा।

हकीमजी कुछ देर सोचते रहे, फिर बाहर जंगल से किसी पेड़ की पत्ती लाने को कहा।

सिंभू कठपुतली की तरह घर से बाहर हुआ। सामने से कुतबी आ रहा था। उसने पुकारकर कहा—"ठाकुर साहब, किधर चले?"

सिंभू ने सिर उठाकर कुतबी को देखा, पहले कोई कड़ा उत्तर देना चाहा, फिर सँभलकर बोला—"कहीं नहीं भाई, अपने कर्मों के फल भोगने जा रहा हूँ!"

"क्यों, क्या हुआ?" कुतबी का स्वर सहानुभूति से भीगा हुआ था।

सिंभू ने असली भाव छिपाकर कहा—"सुबह से बुरी हालत है भैया......"

"किस की ? भाभी की ?"

"हाँ, सुबह से खून की क़ै कर रही है। श्यामपुर से हकीमजी को लाया हूँ। उन्होंने...पेड़ की पत्तियाँ लाने को कहा है।"

"अरे ! रात को तो अच्छी-बिच्छी थी; रात-रात में क्या हो गया ?"

"हुआ क्या—भाई, तक़दीर के चक्कर हैं।"

कुतबो सिंभू के साथ-साथ चल रहा था। कहने लगा—"तो तुम ठाकुर साहब, क्यों हैरान होते हो ?...तुम घर चलो ; मैं पत्ते तोड़कर लाता हूँ।... दुःख-सुख में काम न आया, तो कब आऊँगा ?"

सिंभू का क्रोध-भाव घटा। उसने कुतबो पर गहरी नजर डालकर कहा—"नहीं भाई, तुम मेरे लिये क्यों तकलीफ उठाते हो ? अपनी मुसीबत को मैं खुद ही झेल लूँगा।"

"वाह ठाकुर साहब, इसमें तकलीफ की क्या

बात है ! मैं तो आपका ग़ुलाम हूँ । जाओ, पत्ते लेकर मैं अभी आया !"

सिंभू हारकर घर को चला, और कुतबी जंगल को ।

कुतबी पत्ते लेकर शीघ्र ही आ गया । हकीमजी ने भगवानदेई को दवा दी, और पत्ते पीसकर दवा मिलाने की विधि बताई । भगवानदेई सिल-लोढ़ा लेकर पत्ते पीसने लगी ।

कुतबी ने सिंभू को एक तरफ़ ले जाकर धीरे से पूछा—"ठाकुर साहब, क्या तकलीफ़ हो गई अचानक... ?"

सिंभू एकदम असली बात बताने की हिम्मत न कर सका । बोला—"भाई, तक़दीर के चक्कर हैं !"

कुतबी ने मन में अभी-अभी एक बात तैयार की थी ; उसका उपयोग किए बिना वह न रह सका । सिंभू के कान में बोला—"ठाकुर साहब, एक बात है ।"

"क्या ?"

"कहने को जी तो नहीं चाहता, पर......।...... सुनकर नाराज़ तो न होगे ?"

"मैं तुम पर क्या नाराज़ होऊँगा भाई, बोलो, क्या बात है ?"

कुतबी एक बार रुका ; जैसे खाई पार करनेवाला घोड़ा शरीर तोलने के लिये रुकता है, और फिर एक-दम कह बैठा—"रामसनेही ने भाभी पर मूठ छुड़-वाई है !"

सिंभू निस्तब्ध खड़ा रहा ।

कुतबी ने कहना आरंभ किया—"रात को जब मैं तुम्हारे पास से गया था न ?........."फिर ठहर-कर—"......रामसनेही का घर तो रस्ते में ही है ; तो देखा—नरसिंह भगत और रामसनेही अपनी छत पर खड़े हैं। नरसिंह भगत हाथ में कुछ लिए हुए है, और मुँह से कुछ कह रहा है। फिर उसने हाथ की चीज़ को आसमान की तरफ़ फेंक दिया—और तीन बार 'सरूपी ! सरूपी ! सरूपी !' कहा। मैंने देखा—उस चीज़ का रंग लाल सुर्ख हो

गया, और उड़ती हुई वह तुम्हारे घर की तरफ़ आने लगी। मारे डर के मेरे बदन में तो पसीना आ गया!!"

सिंभू वज्राहत-सा खड़ा रहा।

कुतबी ने कहा—"अब ठाकुर साहब, किसी तरह उजड़ता हुआ घर बचाओ! नरसिंह भगत की मूठ बड़ी तेज होती है।"

अब सिंभू के मुँह से निकला—"तभी!...... भला दो-चार थप्पड़-लातों से ख़ून फेंकने की नौबत आ सकती थी?"

कुतबी चौंका। बोला—"थप्पड़-लात कैसी?"

सिंभू ने कहा—"कुछ नहीं जी, मामूली बात थी; हाथ चला बैठा।......यही रोज के झगड़े!"

कुतबी ने लापर्वाही से सिर घुमाकर कहा—"यों मार-पीट तो सभी के घर में होती है जी, इन मार-पीटों से क्या ख़ून की क़ै करने की नौबत आती है? यह तो ठाकुर साहब, नरसिंह भगत की करतूत है, जो यह सब नाच नचा रही है। समझे?...

कहा मानो, फ़ौरन् दौड़-धूप करो, वर्ना पीछे सिवा पछतावे के कुछ हाथ न लगेगा !"

"तो क्या करूँ भाई ?" सिंभू ने मानो निराशा के समुद्र में डूबते हुए कहा।

"मेरी मानो तो फ़ौरन् शाहपुर चले आओ; न्यादर ओझे को लेकर आओ। नरसिंह भगत की मूठ काटने की हिम्मत उसी में है।...या कहो तो मैं जाऊँ; तुम यहीं रहो।"

सिंभू ने नेत्रों में कृतज्ञता और दीनता भरकर कहा—"तुम्हारा एहसान कभी न भूलूँगा भाई ! करो हिम्मत !"

कुतबी "वाह ! एहसान क्या ! अभी जाता हूँ।" कहता हुआ बाहर हो गया।

सिंभू कुछ देर वहीं खड़ा रहा, फिर धीरे से बोला—"रामसनेही, देर है, अंधेर नहीं; परमात्मा सबको देखता है !"—और तब वह भीतर हकीम-जी के पास चला।

कुतबी सिंभू के घर से निकला, तो सीधा नूरन के

पास पहुँचा । जाकर बोला—"लो उस्ताद ! सिंभू भी हाथ में आ ही गया समझो !"

नूरन ने पूछा—"कैसे ? क्या हुआ ?"

कुतबी ने सब दास्तान सुनाई, और कहा—"सिंभू पर रंग जम गया है, अब वह जरूर हमारी मदद करेगा ।"

नूरन बोला—"बेशक, तरकीब तो तुमने लाजवाब की है ! मगर इन काफ़िरों का एतबार करना हिमाक़त है, न मालूम किस वक़्त पलट जायँ, और बना-बनाया काम बिगाड़ दें !"

कुतबी ने कहा—"नहीं जी, अब की दफ़ा का रंग सहज ही नहीं छूटेगा । सरूपी के बचने की उम्मीद नहीं है ; मुँह से खून फेंक रही है ।"

....

नूरन ने प्रश्न किया—"मगर तुम जो न्यादर ओझे को बुलाने के लिये उसके घर से आए हो, उसका क्या जवाब दोगे ?"

कुतबी ने हँसकर कहा—"यह मैं पहले ही सोच

चुका था। न्यादर असल में शहर गया है; मैं जाकर यही कह दूँगा। क्यों ठीक है ? अब तो शक की गुंजाइश नहीं है ?"

नूरन ने कुतबी की पीठ ठोकी, और कहा—"शाबाश पट्ठे! तू मज़हब को ज़बर्दस्त ख़िदमत करने को पैदा हुआ है, ऐसा दिखाई पड़ता है। शाबाश! शाबाश!!"

कुतबी ने गौरव की लाज से दबकर सिर नीचा कर लिया।.........

नूरन ने कहा—"तो तुम सिंभू से इस बात का ज़िक्र करोगे ?"

"किसका ? खेत जल......"

"हाँ-हाँ, इसी का...?"

"......एकदम ज़िक्र करना तो ठीक नहीं; हाँ, इशारा ज़रूर कर दूँगा कि जल्द ही रामसनेही को इसका मज़ा चखाऊँगा।"

"...हाँ, ठीक है, अभी कोई ऐसी बात न कह बैठना, जिससे इस मामले में किसी तरह मेरा

लगाव जाहिर हो। बल्कि तुम कल जाहिर तो यह करना कि रामसनेही का खेत तुमने उसका बदला लेने को ही जलाया था।"

"अच्छी बात है। मगर उस्ताद, ऐंडी-बेंडी पड़ने पर मुझे बचाओगे तो तुम्हीं?"

"क्यों नहीं? यह भी कोई कहने की बात है!"

और बहुत-सी बातें होती रहीं, तब कुतबी सिंभू के घर न्यादर ओझे की खबर लेकर चला।

---

(७)

दूसरे दिन सुबह तक सरूपी की दशा बहुत ख़राब हो चुकी थी। ख़ून की क़ै-पर-क़ै आ रही थीं, और सख़्त बेहोशी थी। कुतबी कई जगह जा चुका था, पर अब तक सब तरफ़ से निराशा हाथ लगी थी। न्यादर ओझा तो शहर गया था, और कोई भी ओझा भगत अथवा स्याना न मिल सका, जो नरसिंह भगत की मूठ का 'तोड़' कर सकता! सिंभू किंकर्तव्य-मूढ़ हो रहा था। भगवानदेई से भी उसने मूठ की बात कह दी थी। भगवानदेई को उसकी बात पर विश्वास कर लेने में कोई आपत्ति न हुई, और वह साँझ से ही रामसनेही, उसकी स्त्री और उसके पुत्र को कोस रही थी।

सुबह होने पर वह घर से बाहर निकला। गाँव आज असाधारणतया सुनसान था। एक बार उसे कुछ

अचरज भी हुआ, पर अधिक जिज्ञासा उत्पन्नहोने की उसके मन में जगह न थी। चिंता और दुःख के भार से दबा हुआ धरती देखता हुआ, वह धीरे-धीरे चला जा रहा था।

इसी अवस्था में वह गाँव से बाहर हो गया।

अचानक हवा के एक बड़े झोंके के साथ बहुत-से आदमियों के मुँह से निकली हुई आवाज़ उसके कान में पड़ी। उसने चौंककर सिर उठाया, और उसी तरफ़ देखा।

सैकड़ों आदमी दिखाई दिए। एक खेत के चारो तरफ़ खड़े थे और फिर रहे थे। लंबे-चौड़े कई खेत, सूखे अन्न-वृक्षों की जगह एक विस्तृत कलौंस से परिपूर्ण थे। सिंभू ने चिहुँककर पहचाना—खेत रामसनेही के थे !!

सिंभू के हृदय में ज़ोर का झोंका लगा। यह क्या हुआ ? किसने किया ? कैसे किया ?.........!!!

वह वहीं खड़ा हो गया। एक बार सोचा—खेतों की तरफ़ चलूँ। वहीं चलकर सब बातें मालूम हो

जायँगी। कुछ दूर इस भीड़-भाड़ या जले हुए खेतों की तरफ़ बढ़ा भी, पर फिर ठहर गया। उसका जाना ठीक नहीं है। न इतनी दूर जाने को उसे फ़ुरसत है!

परंतु सारी बात जानने की इच्छा तो बड़ी प्रबल थी।

इतने में उसने देखा—कोई उधर से दौड़ता आ रहा है। दौड़कर आनेवाले का लक्ष्य गाँव है, इसलिये सिंभू ज़रा तेज़ चलता हुआ गाँव के दर्वाज़ पर पहुँचा।

दौड़कर आनेवाला बलदेव था। सिंभू ने पूछा—"क्या बात है भाई, यह कैसी भीड़-भाड़ है?"

बलदेव ने विचित्र दृष्टि से प्रश्न-कर्ता को ताका—सिर से पैर तक! फिर बोला—"तुम्हें पता नहीं?"

"वाह रे पागल! मुझे पता होता, तो पूछता ही क्यों?"

बलदेव बड़ी असभ्यता से कुछ देर उसे घूरता रहा, फिर मुँह फेरकर कहने लगा—"रामसनेही के

पके खेतों में कोई पापी रात को आग लगा गया है !" 'पापी' कहते हुए उसकी आँखें चमकीं।

सिंभू इसी उत्तर की आशा कर रहा था; अचरज का भाव वह बना न सका। बलदेव उसका भाव न बदलता हुआ देखकर कुछ और ही समझा। उसने कहा—"करनी का फल सबको भोगना पड़ता है भाई साहब, ऐसा पाप करनेवाले के तन में कीड़े पड़ते हैं।" और वह मुँह बनाता हुआ दूसरी तरफ़ चला गया।

बलदेव का भाव सिंभू से छिपा न रहा। क्या लोग मुझे अपराधी समझ रहे हैं ? सिंभू इसी सोच में वहीं खड़ा रह गया।

इतने में कुछ लोगों के बातचीत करने की आवाज़ उसने सुनी। सिर उठाकर देखा—चार-पाँच आदमियों का झुंड गाँव के पास आ पहुँचा है, और उनके पीछे भी बहुत-से आदमी उधर ही आ रहे हैं।

उसने वहाँ ठहरना अच्छा न समझा। तेज़ी से घर की तरफ़ चल दिया।

पर खेद ! आनेवालों ने उसे देख लिया था, और उसका उन्हें देखकर चला जाना उसके लिये बहुत अहितकर सिद्ध हुआ ।

× × ×

सिंभू दिन-भर स्त्री की देख-रेख में लगा रहा । घर का दर्वाज़ा उसने भीतर से बंद कर लिया, और सुबह से दोपहर तक आँसू-भरी आँखों-सहित सरूपो के सिरहाने बैठा रहा ।

भगवानदेई ने रोटी तैयार की, और सिंभू से खाने का अनुरोध किया । सिंभू को भला रोटी भाती ? उसने इनकार कर दिया ।

"कल से दाना मुँह में नहीं डाला है, इस तरह तो तुम भी पड़ रहोगे, फिर काम करनेवाला कौन रह जायगा ?" यह और इसी तरह की और बातें कहकर भगवान-देई ने आखिर सिंभू को थाली पर बैठा ही दिया ।

लेकिन रोटी का कौर सिंभू को बे-स्वाद और अखाद्य-सा लगता था । ज्यों-त्यों करके आधी रोटी गले के नीचे उतारी, और खड़ा हो गया ।

भगवानदेई तब थोड़ी देर के लिये अपने घर गई—यानी भोजन बनाकर खाने के लिये। जब आई, तो बड़ी घबराई हुई-सी! सिंभू से कहने लगी—"अरे, बड़ा गजब हो गया रे!"

"क्या हुआ?"

"रात को रामसनेही के पके खेतों में आग लग गई!"

"वह मुझे मालूम हो चुका है।...इससे आगे भी कुछ हुआ है?"

"हाँ, हुआ क्यों नहीं? लोग कुतबी को पकड़-कर थाने पर ले गए हैं।"

"कुतबी को?" सिंभू ने उछलकर पूछा।

"हाँ, कुतबी को। खेतों से गाँव तक उसके पैरों की छाप मिली है।......कुतबी तो बेचारा ऐसा आदमी है नहीं! कल देखो, तुम्हारे लिये ही कितनी दौड़-धूप करता रहा!"

सिंभू ने आप-ही-आप कहा—"कुतबी को थाने ले गए हैं!"

भगवानदेई समझी—मुझसे प्रश्न किया गया है। बोली—"हाँ, ले तो गए हैं, पर कुतबो तो ऐसा आदमी जान नहीं पड़ता। उसे रामसनेही से ऐसा क्या बैर ?" कहते-कहते भगवानदेई का स्वर संदिग्ध हो उठा।

'चाची' का बदला हुआ स्वर कान में पड़ते ही सिंभू जग-सा पड़ा! सँभलकर बोला—"हाँ, मैं भी यही सोच रहा हूँ। भला कुतबो को उससे क्या दुस्मनी थी ? वह उसके खेतों में क्यों आग लगाने जाता ?"

चाची ने कहा—"भैया, असल में आजकल तुम्हारे दिन बुरे आ रहे हैं।......लोग कह रहे हैं—'सब सिंभू के इसारे से हुआ है।' तुम अपनी ही मुसीबत में पड़े हो, तुम भला किसी का क्या बुरा सोचोगे ?......ठीक है! ऐसे ही समय में बैरी अपना बैर निकालते हैं !!"

सिंभू फिर सोच में पड़ गया। मुँह से कुछ न बोल सका।

भगवानदेई ने अधिक संदिग्ध होकर कहा—"सिंभू......"

"हाँ, चाची !"

"एक बात पूछूँ ?"

"हाँ, पूछो।"

"बुरा तो न मानोगे ?"

"नहीं ; पूछो।"

.. ..

"देखो, कोई इस जनम में किसी का बुरा करता है, तो परमात्मा अगले जनम में उसे इसका फल दे देता है........."

"हाँ.........!"

"रामसनेही ने तुम्हारे साथ बुराई की, तो उसे इसका फल जरूर मिलेगा।"

चाची की भूमिका से ऊबकर सिंभू ने कहा—"तो तुम्हारा मतलब क्या है ?"

चाची ने एकदम कह दिया—"कहीं सचमुच तेरे इसारे से तो कुतबी यह पाप नहीं कमा बैठा ?"

सिंभू ने मुश्किल में चाची की बात समाप्त होने दी।

कहने लगा—"चाची, लोग मुसरे कुछ भी कहें, मैं उनकी पर्वाह नहीं करता; मैं सच्चा हूँ। मैं अपने इस सोए हुए बेटे की देह छूकर कहता हूँ—अगर कुतबी को इस किसम का मैंने जरा भी इसारा किय हो, तो मैं इस बालक से हाथ धोऊँ, और सात जनम मुझे मानुस-तन न मिले! दुनिया किसी के हृदय को क्या जाने......"

सिंभू यह कहता-कहता रो पड़ा।

चाची की आँखें भी सूखी न रह सकीं। बोली—"पागल हुआ है रे! मैंने तो यों ही तेरा मन देखने को पूछा था! मैं क्या तुझे जानती नहीं हूँ? चूल्हे में जाय कुतबी और भट्ठी में जाय उसका काम; तुम मेरे बच्चे की सौगंध तो न खाओ!"

भगवानदेई यह कहती-कहती मनोहर को गोदी में उठाकर चूमने लगी।

बच्चा जागकर मचलने लगा।

सिभू ने आँसू पोंछे।

सरूपी बेहोश थी।

× × ×

वह रात भी बुरी तरह कटी। सरूपी के बचने की कोई आशा न रही। सिंभू का मन भविष्य की कल्पना से काँपने लगा। रात में बीसों बार रोया, बीसों बार बच्चे को छाती से लगाया, बीसों बार सरूपी को आवाज़ देकर जगाने की चेष्टा की।

पर सरूपी निश्चल, निस्तब्ध पड़ी बड़े कष्ट से अपनी साँस पूरी कर रही थी।

सिंभू को सांत्वना देनेवाली एक भगवानदेई थी। बेचारी बुढ़िया बचपन से ही सिंभू पर बहुत स्नेह रखती थी। चौदह वर्ष की उम्र में विधवा हो गई थी और सिंभू के बाप ने मुद्दतों तक उसे रोटी-कपड़े की मदद दी थी। यह ममता, यह सहानुभूति और यह लगन उसी सहायता की उत्पत्ति थी।

रात में सिंभू एक क्षण के लिये न सोया। सुन-

सान कोठे में सरूपो की साँसों की सनसनाहट बड़ी डरावनी, बड़ी बेधक और बड़ी करुणा-पूर्ण लगती थी। घर-भर में निराशा और वेदना के बादल घूम रहे थे, और सिंभू इन बादलों से लिपटा हुआ तन-बदन की सुध भूल गया था।

सुबह हुई। भगवानदेई को रोगी के पास छोड़, सिंभू दिशा-फराग़त के लिये जंगल की तरफ़ चला।

सिंभू अपने सोच में डूबा चला जा रहा था। अचानक उसे दो आदमियों के बातचीत करने की आवाज़ आई। वह खड़ा हो गया।

पाँच-छः पेड़ों का झुरमुट था। सिंभू झुरमुट के इस ओर था, और बातें करनेवाले दूसरी ओर।

सिंभू ने आवाज़ से पहचाना—एक था कुतबी, दूसरा नूरन तेली !

"हाँ उस्ताद !" कुतबी कह रहा था—"आपकी महरबानी से बच तो गया......"

"अरे नहीं !" नूरन बोला—"महरबानी तो अल्लाह-ताला की है, हम और तुम तो उसके

नाचीज़ बंदे हैं। तुम बच गए, तो उसी के फ़ज़ल से !"

कुतबी बोला—"मगर उस्ताद, बेचारा सिंभू बचे, तब बात है। सारे गाँव का शक उसी पर है। दारोग़ा साहब भी इसी कोशिश......"

असावधानता-वश अथवा मानसिक उद्वेग के कारण सिंभू के पैर लड़खड़ा गए, और एक ज़ोर की 'चर्र'-ध्वनि हुई।

सँभलकर सिंभू ने खाँसा, और झुरमुट पार करने के लिये मुड़ा।

बातें करनेवाले चौंककर रुक गए। इधर-उधर देखा। इतने में सिंभू खुद ही उनके सामने आ खड़ा हुआ।

कुतबी सिंभू को पहचानकर एक बार डरा, फिर आश्चर्यित हुआ, और फिर सँभलकर बोला—"कहिए ठाकुर साहब, भाभी का क्या हाल है ?"

सिंभू ने कुतबी की बात का कोई उत्तर न दिया; और सूखी टिपटिपाती हुई आँखें पूरी खोलकर कहा—

"कुतबी, तुमने आख़िर मेरे माथे स्याही पोत ही दी !!"

कुतबी चुप !

नूरन ने कहा— 'क्या हुआ ठाकुर साहब ?"

सिंभू ने नूरन की तरफ़ मुड़कर कहा—' मियाँ जी, मैंने आपकी बातें सुनी हैं। पाप आप लोगों ने किया, और दोस मेरे मत्थे मढ़ा जायगा। मैं पहले ही आपदा में फँसा हूँ, आप लोगों ने यह नई मुसीबत मेरे लिये खड़ी कर दी। मेरी औरत मरने को पड़ी है, और आप लोगों ने मेरे लिये यह फंदा तैयार कर दिया। मालूम होता है—औरत की अर्थी में भी आप मेरा हाथ न लगने देंगे।"

सिंभू यह कहता-कहता रो पड़ा !

चालाक नूरुद्दीन इतनी देर में सँभल चुका था। आगे बढ़कर सिंभू का हाथ पकड़ लिया, और तसल्ली देता हुआ बोला—"ठाकुर साहब, आप कैसी बातें कर रहे हैं ! जैसे कुतबी को बचाया, वैसे ही आपका भी बाल बाँका नहीं होने दूँगा।

मैं मुसलमान हूँ, मगर उस हिंदू से बेहतर हूँ, जो अपने भाई का घर उजाड़ने में दरेग़ नहीं करता। समझे ठाकुर साहब ! घबराइए नहीं, मैं आपकी मदद करूँगा।"

यह सांत्वना पाकर सिंभू हिचकी बाँधकर रोने लगा।

अब नूरुद्दीन सचमुच पिघल गया ; आख़िर मनुष्य था ! उसने सिंभू के आँसू पोंछे, और स्नेह-सिक्त स्वर में कहा—"चलो भाई, तुम्हारी औरत को चलकर मैं देखता हूँ। घबराओ नहीं, अभी शहर आदमी भेजकर डॉक्टर बुलाता हूँ। चलो; तसल्ली रक्खो !"

सिंभू आवेग में भरकर नूरुद्दीन से लिपट गया, और रोता-रोता बोला—"भाई साहब, मुझे बचाना आपके ही हाथ में है !"

नूरुद्दीन ने उसे चुमकारा, और कहा—"चलो, घर चलो। ख़ुदा तुम्हारी मदद करेगा।"

नूरन और सिंभू गाँव की तरफ़ चले।

कुतबी कठपुतली की तरह पीछे-पीछे आ रहा था।

परंतु हाय ! समय बीत चुका था, चिड़िया उड़ चुकी थी। साँप निकल गया था ! जब ये लोग घर में घुसे, तो भगवानदेई बच्चे को गोद में लिए रोती-चिल्लाती कोठे से बाहर आ रही थी !

सरूपी मर चुकी थी !!

---

(८)

धूप खूब फैल गई थी। रामसनेही अभी तक नहीं उठा था। रात को थका-हारा थाने से लौटा, तो अब तक बेहोश पड़ा था।

दुर्गा ने खाट के पास जाकर उसका शरीर हिलाया, धीरे-धीरे दो-तीन बार "उठो-उठो" भी कहा।

रामसनेही जाग गया, और अँगड़ाई लेकर उठ खड़ा हुआ। मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं, आँखों में चिंता घुसी हुई थी।

दुर्गा ने धीरे से कहा—"घनश्याम बाहर से कहता आया है, सरूपी मर गई है। जरा उठकर देखो तो, क्या बात है।"

रामसनेही कहाँ तो चिंता और सुस्ती में डूबा चुप बैठा था, कहाँ एकदम उछल पड़ा। बोला—"सरूपी मर गई है! कब? कैसे?"

"पता नहीं कैसे ?" दुर्गा ने कहा—"घनश्याम कहता आया है। जरा उठकर देखो तो सही।"

रामसनेही झपटकर खाट से उतर पड़ा, खूँटी से चादर उतारी। पर फिर कुछ सोचकर वहीं बैठ गया। बोला—"मर गई, तो मरने दो; हमें क्या गरज !"

"क्यों ? आखिर को भाई हो ! लड़ाई-झगड़े तो होते ही हैं, मौत-जिंदगी में इन्हें भूल जाना पड़ता है। जाओ, सगे भाई-समान होकर भी क्या सामिल न होगे ?"

"अरी, तेरी अकल मारी गई है ! किसका भाई, और कौन भाई ? वह हमारा गला काटे, और हम उसे भाई बनावें ! धिक्कार है ऐसे भाई पर, और लानत है भाई बनानेवाले पर !"

"नहीं-नहीं, ऐसा सोचे काम नहीं चलेगा। जाना तुम्हें जरूर पड़ेगा। क्या हुआ......"

"मैं ! और उस हरामजादी की अर्थी में हाथ लगाऊँ !..."

"च ! च ! च ! मरने के बाद भी किसी को ऐसे

कहा जाता है। किसी का कोई कसूर नहीं, सब हमारे कर्मों का दोस है!"

"नहीं जी, परमात्मा सबको देखता है। मालूम होता है, खेत भी इसी हत्यारे सिंभू ने जलवाए हैं, गाँववालों का संदेह ठीक है। बेवकूफी तो मेरी ही हुई, जो नूरन पर सक (शक) कर बैठा। दारोगा साहब ने तो पूछा था—'सिंभू पर सक है?' मैंने ही इनकार कर दिया!...खैर जी, परमात्मा ने किए का फल दे दिया। वह बड़ा न्यायी है!"

"खैर, यह तो पीछे भी होता रहेगा। उन्होंने खेत जलवाए तो, और नूरन ने जलवाए तो, अब तो तुम्हें जाना ही पड़ेगा। उठो!"

"ऐसा कभी नहीं हो सकता; मैं नहीं जाऊँगा।"

"देखो, चले जाओ। दुनिया नाम धरेगी।"

"मरदों की एक बात होती है। मै कह चुका, वह मेरे लिये मर चुके, मैं उनके लिये। मैं नहीं जाऊँगा।"

"देखो, चले जाओ, कहा मानो।"

"नहीं, कभी नहीं।"

"देखो, हाथ जोड़ती हूँ, चले..."

"हाथ क्या पैरों में सिर रगड़ो, तो भी नहीं।"

"चले जाओ, चले जाओ। वखत निकल जाता है, बात रह जाती है।"

"कभी नहीं, मरदों की एक जबान होती है।"

"उनके बहुत अहसान हैं। चले जाओ।"

"बस, ज्यादा बकवाद की जरूरत नहीं है। मैं नहीं जाऊँगा।"

× × ×

सरूपी की अर्थी जब श्मशान की ओर जा रही थी, तो लोगों में "रामसनेही नहीं आया" की बड़ी चर्चा रही। किसी ने कहा—"दारोगा साहब के सामने तो दुस्मनी निकाली नहीं, अब क्या बात हुई, जो मातम-पुर्सी तक में सामिल न हुआ?"

"आदमी का मन ही तो है; आ गया होगा कोई खयाल।"

....

"हमारी समझ में तो और ही कुछ आ रहा है।"

"क्या ?"

"लुगाई ने भरा है।"

"क्या अचरज है।......मगर यार, औरत की तो बड़ी तारीफ सुनी जाती है।"

"अजी सब दूर के ढोल सुहावने होते हैं।..."

....

"पर साब, परमात्मा देखता सबको है।"

"कैसे ?"

"रामसनेही ने भाई समझकर बखस दिया, तो परमात्मा ने दंड दे दिया। वाह ! इस हाथ दे, उस हाथ......"

"छिश् ! छिश् ! पागल ! ये बातें कहीं ऐसे मौके पर होती हैं ! चुप !!"

'राम-नाम सत्य है।' के घोर निनाद में ऐसी ही बातें चुप-चुप होती जा रही थीं।

उधर सिभू के जी पर जो बीत रही थी, वही जानता है। स्त्री की जीवितावस्था में वह सदा उसकी मौत मनाया करता था, पर अब ? अब उसे ऐसा

अनुभव हो रहा था, मानो उसकी आत्मा का आधा सत्त्व सरूपी की अर्थी पर लिपटा जा रहा है ! रो न सकता था, चिल्ला न सकता था, बोल न सकता था। केवल मन-ही-मन घुल रहा था, और एक विचित्र मानसिक स्थिति का अनुभव कर रहा था।

लोगों का मत—उसकी स्त्री के मरने के विषय में—जो था, उसकी भनक उसके कानों में पड़ चुकी थी। स्त्री की मौत ने अगर जख्म किया, तो लोगों के इस मत ने नमक छिड़का। पर अंत में यह सोचकर बेचारा संतोष कर लेता था कि आदि से अंत तक वह उस विषय में पूर्ण निर्दोष है, जिसका संदेह लोग उस पर कर रहे हैं।

रस्ते में एक आदमी ने उसे सुनाकर दूसरे से कहा—"रामसनेही दिखाई नहीं दिया।"

दूसरे ने कहा—"अजी वह भला आता ?"

क्यों ?"

"उसका यहाँ आने का मुँह कहाँ था ?" सिंभू ने सक्रोध कहा—"परमात्मा सबको देखता है।

उसे अपने किए का फल जल्दी ही भोगना पड़ेगा। परमात्मा के यहाँ देर है, अंधेर नहीं।" यह कहता-कहता वह अर्थी को कंधा देने आगे बढ़ गया।

× × ×

जब चिता में आग दी गई, तो सिंभू एक वयो-वृद्ध संबंधी का गला पकड़कर चिल्लाकर रो उठा। वृद्ध संबंधी ने स्नेह-सिक्त स्वर में उसे सांत्वना दी, और कहने लगे—"सब्र करो बेटा, वह इतने ही दिन का अन्न-जल बदकर आई थी। उसे इतने ही दिन इस चोले में रहना था।"

सिंभू रोता-रोता बोला—"बाबा, मैं ही उसका हत्यारा हूँ। मैंने ही उसे मारा है। हाय ! वह मर गई ; मैं पापी न मरा !"

सब लोग वहीं आ गए थे। एक ने कहा—"अरे बावला हुआ है, सिंभू ! कोई अपने हाथ से अपना घर बिगाड़ता है ? अरे ! उसने अगले जन्म में बड़ा तप किया होगा, जो चूड़ी पहने चिता पर चढ़ गई।"

एक अधेड़ महाशय खेद प्रकाश करने लगे—"साब, बहुएँ सैकड़ों हमारी नजरों से गुजरीं, पर यह 'एक' ही थी ! बड़ी दिलावर थी ! बड़ी कमेरी थी ! हाड़ कँपानेवाला जाड़ा पड़ता, हम लोग अलाव पर बैठे हुए भी कँपकँपाते और वह ऐसे समय में ही बीसों घड़े पानी भरती थी। अदब-कायदा इतना रखती थी कि किसी ने आज तक उसकी उँगली तक नहीं देखी !"

ऐसी ही अनेक बातें सरूपी के विषय में हुईं। सिंभू सब सुनता था, और उसका मन अधिक-अधिक उमड़ता था। ख़ैर, किसी प्रकार हृदय सँभाला, स्त्री को चिता पर एक हारी हुई दृष्टि डाली, और सब लोगों के साथ नदी स्नान करने चला गया।

चिता धू-धू करके जल रही थी ! चट्-चट् आवाज़ निकल रही थी !! और लड़ाका, कर्कशा सरूपी का मृत शरीर राख में परिणत हो रहा था !!!

× × ×

साँझ को नूरुद्दीन और कुतबी सिंभू के घर पहुँचे।

सिंभू बच्चे को गोद में लिए खाट पर उदास बैठा था इन्हें देखकर खड़ा हो गया। बोला—"आइए।"

नूरन अपने हाथ से वहीं पड़ी हुई एक बोरी बिछाकर बैठ गया। कुतबी ज़रा देर बैठा।

सिंभू चुप बैठा रहा। आँखें ज़मीन पर लगाए रहा।

बात कैसे चले ? तीनों यही सोच रहे थे। इतने में सिंभू की आँखों से कई आँसू टपक पड़े।

नूरन ने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ा, और कहा—"अरे भाई ! क्यों ग़मगीन होते हो ? मौत में किसका चारा है ? सब्र करो।"

सिंभू ने कहा—"भाईजी, कैसे सब्र करूँ ? उसकी उम्र क्या मरने की थी ? अच्छी, बुरी, जैसी थी, घर में दिखाई तो देती थी। अब तो यह घर फाड़ खाने को आता है।"

नूरन ने कहा—"ठीक है भाई, कहा ही है—'बिन घरनी घर भूत का डेरा'; सो भाई, घर की रौनक़ तो औरत से ही है।"

कुतबी बोला—"ठाकुर साहब, घबराइए नहीं,

जिसने आपका चमन उजाड़ा है, उसका खुदा उजाड़ेगा।"

नूरन ने कहा—"खुदा बड़ा आदिल है।......... क्यों भाई सिंभू, रामसनेही मातम-पुर्सी में शरीक हुआ या नहीं ?"

सिंभू ने 'नहीं' की गर्दन हिला दी।

कुतबी कहने लगा—"अजी, शरीक होना कैसा ? वह तो गाँव-भर में ऐसी भद्दी-भद्दी बातें कहता फिरता है कि.........बस, क्या कहूँ...!"

नूरन ने पूछा—"क्या ?"

"बस, उस्ताद, पूछो मत ; खाम-खा ठाकुर साहब का रंज बढ़ेगा।"

"नहीं ; कहो।" सिंभू बोला—"क्या बातें कहता फिरता है ?"

कुतबी हिचक-हिचककर बोला—"कहता है—'अच्छा हुआ, किए का फल मिल गया, हाथों-हाथ बदला पा लिया' ऐसी ही बहुत-सी बातें ! बस इसी से समझ लो।"

सिंभू ने कहा—"हूँ !"

नूरन ने कहा—"अच्छा ! अभी साले को ऐंठ गई नहीं ? अभी और कुछ जी में है ?"

कुलवी ने कहा—"अभी तो कोठी-कुठले अनाज से भरे रक्खे हैं !"

नूरन कुछ सोचते हुए आप-ही-आप बड़बड़ाया—"अभी साले की ऐंठ नहीं निकली है ! अच्छा, देखूँगा !"

सिंभू ये बातें बड़े आशा-पूर्ण हृदय से सुन रहा था। अब उसके मन में न रामसनेही के प्रति स्नेह रह गया था, न उस स्नेह से पैदा होनेवाला धर्म-भय !

नूरन ने उसका भाव ताड़ लिया। बोला—"कहो भाई सिंभू, अब भी 'भाई' का लिहाज़ रक्खोगे ?"

सिंभू क्या जवाब दे ? आँखें नीची किए हुए चुप !

नूरन बोला—"तुम्हारे दिल में जो तूफ़ान बरपा है, उसका अंदाज़ा मैं कर सकता हूँ। मैं हूँ—तुम्हारी ज़ात-बिरादरी का नहीं, तुम्हारा रिश्तेदार नहीं, तुम्हारा कुछ नहीं, मुझे जब ऐसा जोश आ रहा है,

सो तुम्हारे ऊपर तो सारी बात बीती है, तुम्हारी क्या हालत होगी ?"

सिंभू तब भी कुछ न बोल सका।

न बोलना ही नूरन के अनुकूल था। उसने फिर कहा—'मुझे तुमसे पूरी हमदर्दी है। मैं ज़ुल्म करनेवाले के मुक़ाबले में ज़ुल्म बरदाश्त करनेवाले से ज्यादा नफ़रत करता हूँ। मैं तुम्हें कभी यह राय नहीं दूँगा कि तुम रामसनेही के इस बेरहम हमले को चुपचाप बरदाश्त कर लो ! मैं कहता हूँ, तुम्हें इसका बदला लेना चाहिए।"

सिंभू ख़ुद ऐसा ही चाहता था, और उसने भाव-भंगी से जी की बात प्रकट भी कर दी।

नूरन ने सब कुछ समझकर कहा—"मैं एक इन्सान की हैसियत से तुम्हारी पूरी मदद करूँगा। सिर्फ़ तुम्हारा इशारा चाहता हूँ, फिर इस बदमाश को मज़ा चखाना मेरा काम है।"

नूरन जितना चाहता था, उससे भी अधिक इशारा उसने पा लिया !

इतने में भगवानदेई आ पहुँची। नूरन अपनी

बात खतम कर चुका था। उसने दो-चार साधारण बातों के बाद कुतबी सहित प्रस्थान किया।

× × ×

घर पहुँचकर नूरन ने कुतबी से कहा—"ठीक रहा न?"

"बिल्कुल ठीक!"

"रात को पसर चराने * जाता है। बस, मौक़ा देखते रहो।......"

"अच्छी बात है।"

"हाँ, और देखो, ये ऐंठू मियाँ सबसे पहले, और सबसे अलग जाते हैं, यह तुम्हारे लिये और भी अच्छी बात है।"

"बेशक! यह सबसे अच्छी बात है।"

"हाँ, तुम हो, निसारू है, बुंदू है, आज़मअली है; और एकाध हो जायगा........."

"बस जी बस, ज्यादा की क्या जरूरत है? अव्वल तो मैं अकेला ही काफी हूँ, नहीं तो एकाध और सही।"

---

* गर्मी के दिनों में देहाती लोग अपने ढोरों को रात को चराने ले जाते हैं। इसी को पसर चराना कहते हैं।

"यह तुम्हारा कहना ठीक है, मगर अपनी तरफ़ से तो तैयार रहना चाहिए।.........हाँ तो, देखो, जब दुश्मन गिर जाय, तो भैंसें लेकर चल देना। भैंसें जहाँ पहुँचानी होंगी, बुंदू वह जगह जानता है।"

"कहाँ?"

"बुंदू जानता है।......देखो, इससे दो फ़ायदे होंगे। एक तो—दोनों भैंसें चार सौ से कम की नहीं हैं, दूसरे—लोग समझेंगे; चोरों की करतूत है; हम पर किसी का शुबहा भी नहीं जायगा। समझे?"

"वाह, उस्ताद! क्या तरकीब सोची है! दोनों हाथ लड्डू!! क्यों न हो, आखिर हो तो उस्ताद ही न! वाह वा! वाह!"

"मामूली बात है!......जाओ, अब बुंदू, निसारू, ढूँढू और आजमअली को यहाँ बुला लाओ। कहना, जरा नजर बचाकर आवें। अँधेरा हो गया है; कोई देखेगा भी नहीं! जाओ।"

कृतघ्नी अपनी मौत का सामान करने चल दिया।

---

(९)

पूरा चाँद खिलखिला रहा था। रात का तीसरा पहर शुरू हो गया था। लोग-बाग पसर चराने जाने को उठ खड़े हुए थे। कुछ ने ढोर भी खोल लिए थे। इतने में गाँव के बाहर बहुत दूर से किसी के ज़ोर-ज़ोर से चीख़ने की आवाज़ आई।

चीख़ मदद के लिये थी। ऐसा सुननेवालों ने अनुमान लगाया। कुछ लोग हाथों में लाठी लेकर गाँव से बाहर की तरफ़ दौड़े।

सामने—कोई एक मील दूर से कोई फिर चिल्लाया, लोग उसी चिल्लाहट को लक्ष्य करके जी छोड़-कर भागे।

वहाँ पहुँचकर देखा—एक आदमी लाठी ज़मीन पर टेके एक ऊँचे मिट्टी के ढूहे पर सिर झुकाए बैठा है—जैसे दम ले रहा हो, और एक दूसरा आदमी

सामने ही घास पर पड़ा है। कई गाय-भैंसें इधर-उधर चर रही थीं।

आनेवालों ने पहचाना—बैठा हुआ रामसनेही था, और पड़ा हुआ कुतबी !

कुतबी का सिर फट गया था, और उसी के सदमें से उसके प्राण निकल गए थे !!

रामसनेही चैतन्य होकर उठ खड़ा हुआ। आने-वालों में से एक ने पूछा—"क्या हुआ यह ? ओ रामसनेही !"

"बात यह हुई," रामसनेही ने एकदम कहना शुरू कर दिया—"मैं पसर चरा रहा था। इतने में कई आदमियों ने आकर मुझे घेर लिया। सबके मुँह काले रंग में रँगे हुए थे, इससे मैं किसी को पहचान न सका। उन लोगों ने मुझ पर हमला कर दिया। सबके हाथों में लाठियाँ थीं। मैं ज़ोर से चिल्लाया, और लाठी घुमानी शुरू कर दी। यह कुतबी मेरी लाठी का पूरा हाथ खाकर गिर पड़ा, और मर गया। बस, इसके और सब साथी भाग

गए साले, मेरे भी चोट आई है।" यह कहकर रामसनेही ने सिर पर, बाँह पर, कंधे पर चोट के चिह्न दिखाए।

वाद-विवाद के बाद सब कुछ उसी तरह छोड़ दिया गया, और दो आदमी थाने की ओर दौड़े।

× × ×

थानेदार साहब ने सरगर्मी से खोज शुरू की। रामसनेही को बड़ा आश्चर्य था। कल ही जो थाने-दार उससे सहानुभूति प्रकट करता था, आज वह ऐसा रूखा क्यों है! उससे ऐसे संदेह-जनक प्रश्न क्यों कर रहा है! उसे कुतबी की हत्या के अप-राध में फाँसने में क्यों इतना प्रयत्न-शील है!

यह सब नूरुद्दीन के लिहाज और पैसे का प्रभाव था।

नूरुद्दीन ने गवाही दी—"रामसनेही और कुतबी की मुद्दत से अनबन थी। अभी हाल में कोई इसके खेत में आग लगा गया, तो इसने कुतबी को फँसाने की कोशिश की थी। शाम को कुतबी मुझे मिला

था। वह शाहपुर किसी काम से जा रहा था। मालूम होता है, लौटती दफ़ा रामसनेही ने उसे मार डाला।"

कुतबी की मा ने रोते-रोते कहा—"कुतबी शाम को शाहपुर गया था। पासू नाई से कुछ रुपए लाने थे; वही लेने गया था। कह गया था, रात तक लौट आऊँगा। पर रात को इस रामसनेही ने उसे मार डाला!" यह कहतो-कहतो कुतबी की मा दहाड़ मारती हुई रामसनेही को कोसने लगी।

सिभू ने इस बयान पर अँगूठा लगाया—"कोई दोपहर रात गए मेरे पेट में दर्द उठा। हाजत रफ़ा करने के लिये मैं बाहर निकला। गाँव के पासवाले जोहड़* में पानी नहीं था, इसलिये मैं आगे नाले के पास जाकर बैठा। इतने में मैंने किसी के चिल्लाने की आवाज़ सुनी। देखा, थोड़ी दूर परे दो आदमी लड़ रहे हैं, और उनमें से एक चिल्ला रहा है। मैंने पहचाना, आवाज़ कुतबी की थी। मैं खड़ा हो

* कच्चा तालाब।

गया। इतने में एक आदमी जमीन पर गिर पड़ा, और दूसरा उस पड़े-पड़े पर ही लाठियाँ चलाने लगा। जमीन पर पड़ा हुआ आदमी कई बार चिल्लाया और फिर ठंडा हो गया। मैं दौड़कर नाले पर गया, हाथ धोए, और उस तरफ़ चला। इतने में गाँव की तरफ़ से बहुत-से आदमी भागते हुए आए, और मैं भी उनमें शरीक हो गया।"

मुजरिम रामसनेही ने बयान दिया—"मैं रात को पसर चरा रहा था। इतने में कई आदमी मुँह काले किए मुझ पर आ टूटे। मैं चिल्लाया, और लाठी सँभालकर मैंने उनका मुक़ाबला किया, और उनमें से एक को मार गिराया। अपने एक साथी को गिरता हुआ देखकर और सब भाग गए। मेरी चिल्लाहट सुनकर गाँव की तरफ़ से बहुत-से आदमी दौड़ पड़े। मैंने गिरनेवाले के पास जाकर पहचाना, कुतबी था। और फिर अलग बैठकर गाँववालों के आने की राह देखने लगा।"

थानेदार ने कुतबी की हत्या के अपराध में रामसनेही का चालान कर दिया।

सारे गाँव में तहलका मच गया। जो रामसनेही के मित्र थे, वे कहने लगे—"हे भगवान्! तेरे देखते ऐसा अन्याय हो रहा है। तेरे जानते हुए पापी अपना पाप-कर्म कर जाते हैं! नूरुद्दीन और सिंभू ने बुरी तरह बेचारे को फँसा दिया!! हे ईश्वर! बेचारे रामसनेही, उसकी बहू और उसके बच्चे की रक्षा तेरे हाथ में है!!" इत्यादि-इत्यादि। स्त्रियाँ दुर्गा के पास जा-जाकर उसे धीरज बँधाती थीं। दुर्गा रो-रोकर व्याकुल हो रही थी। बच्चा घनश्याम रोते-रोते बेहोश हो चुका था। घर-भर में क़हर बरस रहा था! सिंभू या नूरुद्दीन इस दृश्य को देखकर पिघल उठते या नहीं, कह नहीं सकते।

रामसनेही के विपक्षी भी गाँव में थे ही। वे कहते थे—"ज्यादा साले की हड्डियाँ कुलमुलाई थीं न! हर किसी से रार मोल लेता फिरता था! अपने सामने किसी को बदता ही नहीं था। अब उस बेचारे कुतबी पर दिखा बैठा लठैती के हाथ! अब देखेंगे फाँसी के तख्ते पर लठैती कहाँ रहती है!"

नूरुद्दीन के पट्ठे बगलें बजा-बजाकर चुप-चुप कहते फिरते थे—"बदमाश चला था नाग से खेलने! उस्ताद को पछाड़ क्या दिया, रुस्तम बन गया! चख लिया न मजा हाथों-हाथ! जानता नहीं था, यह उस्ताद नूरुद्दीन है !!"

सिंभू क्या कहता था? यह हम कोशिश करने पर भी न जान सके।

इसके बाद दस-पंद्रह दिन बीते। दुर्गा का रुदन थमा। शुभचिंतकों की राय से बेचारी ने गहने बेच-कर वकील का प्रबंध किया। निरपराध की निरप-राधिता प्रमाणित करने के लिये सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार हुई, रुपयों के सहारे बेचारी सच्चे न्याय की याचना करने पर कटिबद्ध हुई!

सुबह, शाम और फिर रात बीतते-बीतते आखिर वह दिन आ पहुँचा, जब रामसनेही का मुक़द्दमा सेशन जज की अदालत में पेश हुआ।

रामसनेही हथकड़ी-बेड़ी से जकड़ा हुआ खड़ा था, नूरुद्दीन, सिंभू, कुतबी की मा, पासू नाई और

ख़ुद दारोग़ा साहब भी गवाहों के कटघरे में मौजूद थे।

कई पेशी लगीं। आख़िर एक दिन सिंभू की बारी आई।

सिंभू गवाही देने को तैयार हुआ। नूरुद्दीन वग़ैरा भी पास ही मौजूद थे। सारा दारोमदार सिंभू की गवाही पर ही था। उसने एक बार रामसनेही की तरफ़ देखा। रामसनेही का चेहरा सूख गया था, गालों पर गढ़े पड़ गए थे, आँखें सजल और फटी-फटी हो रही थीं, मानो दया की भिक्षा माँग रही हों!

सिंभू की छाती में मुक्का-सा लगा। मैं क्या कर रहा हूँ! एक बार जान पड़ा, मानो अदालत का कमरा, जज साहब, वकील, चपरासी सब लोग ज़ोर-ज़ोर से घूमने लगे हैं। सिर झायँ-झायँ करने लगा, पैर लड़-खड़ाने लगे, और अपने को सँभाल न सकने के कारण वह सिर पकड़कर धरती पर बैठ गया।

पर चालाक नूरुद्दीन ने संदेह का मौक़ा न दिया।

जज साहब की तरफ़ देखकर उसने नम्रता-पूर्वक कहा—"हुज़ूर, इसे कभी-कभी चक्कर आ जाते हैं।" और सिंभू को सँभालकर खड़ा किया।

तब सिंभू ने कड़ा जी करके उस बयान को दोहरा दिया, जो उसने दारोग़ा साहब के सामने दिया था।

सबबयान पहले-जैसे थे। केवल दारोग़ा साहब ने यह बयान और दिया—"ख़ून की वारदात के कई दिन पेश्तर मुजरिम रामसनेही के खेत में रात को कोई आग लगा गया। रामसनेही ने मक़तूल कुतबी पर इसका इल्ज़ाम लगाया। मगर सुबूत की कमी की वजह से कुतबी क़ुसूरवार साबित न हो सका। मुज-रिम रामसनेही ने—जब कुतबी रिहा हो गया—दाँत पीसकर कहा था—'अच्छा बदमाश, तुझे मज़ा चखा-ऊँगा।' कुतबी ने इसका कोई जवाब नहीं दिया था।"

रामसनेही से कैफ़ियत माँगी गई, तो पहले उसके मुँह से बोल न निकल सका। फिर बड़ी कठिनता से उसने अपने को निरपराध बताया और उस बयान को दोहराया, जो वह पहले दे चुका था।

उसके वकील ने गवाहों से जिरह की। सब सिखाए-पढ़ाए पक्के थे ; कोई न पसीजा। सिंभू ने भी सँभल-सँभलकर अपनी परीक्षा समाप्त की।

रामसनेही सारी जिरह सुन रहा था। वकील साहब जब हारने-से लगे, और अपने फँसने का उसे निश्चय हो गया, तो अचानक एक विचार ने उसके मन में ठोकर लगाई। उसने चिल्लाकर कहा—"मैं जानता हूँ, मेरा ईश्वर जानता है, सिंभू भी जानता है कि मैं बेकुसूर हूँ। मेरे ऊपर सरासर अन्याय हो रहा........।"

हाकिम ने रामसनेही को रोकने की कोशिश की, पर वह बराबर कहता ही रहा—"अगर सिंभू सच्चा है, तो वह गंगाजली हाथ में लेकर बेटे की कसम खा जाय। मुझे अपना अपराध मंजूर होगा।"

सिंभू ने सुना तो काठ हो गया ! बेटे की कसम ! झूठी बात पर ! गंगाजली हाथ में लेकर !

एक क्षण के लिये उसे सर्वत्र अंधकार दिखाई दिया !

नूरुद्दीन ने उसकी यह अवस्था देखी। पैर की

ठोकर मारकर उसे चैतन्य किया, और धीरे से कहा—"क़सम खा लेना। अब झिझके तो दस साल को जाओगे।"

हाकिम ने रामसनेही की बात सुनकर सिंभू की तरफ़ देखा, और कहा—"क्यों? क़सम खाने को तैयार हो?"

नूरुद्दीन ने सिंभू की कमर पर हाथ लगाकर हलके से धकेला, और कहा—"तैयार है!"

हाकिम ने फिर कहा—"क्यों? बेटे की क़सम खाने को तैयार हो? गंगाजली छूकर?"

हाकिम के मुँह से निकला हुआ एक-एक अक्षर मानो बिच्छू बनकर सिंभू के शरीर में डंक मार रहा था! चुप खड़ा रहा।

हाकिम ने फिर कहा—"बोलो, तैयार हो?"

नूरुद्दीन ने चुटकी ली। सिंभू जग-सा गया। बोला—"जी हाँ।"

गंगाजली आई। रामसनेही की आँखों में क्रोध, घृणा, रोष और उत्सुकता का भयानक सामंजस्य था।

सिंभू गंगाजली को मानो फाँसी की रस्सी समझ-कर उसकी ओर बढ़ रहा था।

नूरुद्दीन आशा-प्रद नेत्रों से सिंभू की गति-विधि देख रहा था।

अदालत का कमरा मूक, मौन, शांत, निस्तब्ध इस रहस्य-पूर्ण नाटक का सर्व-प्रधान दृश्य देखने में तल्लीन था!

सिंभू ने गंगाजली पर हाथ रखकर कहा—"मैं अपने बेटे की क़सम खाकर कहता हूँ कि मैंने अदालत में जो बयान दिया है, वह बिल्कुल सच्चा है!"

उसी क्षण मानो नाटक का पर्दा गिर गया। नूरुद्दीन ने संतोष की साँस ली, और लड़खड़ाते हुए सिंभू को सँभाल लिया।

अचानक सबकी आँखें अचरज से खुल गईं! रामसनेही ने ज़ोर से दहाड़कर कहा—"हे ईश्वर! झूठे का नाश हो!!" और यह कहता-कहता वह मूर्च्छित हो गया।

रक्षकों ने क़ैदी को सँभाला। पानी छिड़का गया। हवा की गई। क़ैदी होश में आया।

क़ैदी का वकील शायद उसके पक्ष में कुछ कहने के लिये खड़ा हुआ। क़ैदी ने उसे रोककर कहा—"बस, अब तुम्हारी ज़रूरत नहीं है।..." फिर उसने हाकिम से कहा—"मैं कुसूरवार हूँ। मुझे फाँसी दो।"

हाकिम ने उसकी तरफ़ निर्निमेष दृष्टि से देखा, और कहा—"तुम इक़बाल करते हो, तुमने ख़ून किया।"

क़ैदी ने कहा—"हाँ, मैंने किया—किया—किया; मुझे फाँसी दो।"

...........…

हाकिम ने फ़ैसला सुनाया—"........मुजरिम जुर्म का इक़बाल करता है।...कुतबी का ख़ून करने के अपराध में उसे जान निकलने तक फाँसी पर लटकाए रक्खा जाय।"

हाकिम यह कहते ही कुर्सी छोड़कर खड़ा हो गया।

सिंभू मानो सोता-सोता जग पड़ा। उसने भागती

नज़र से एक बार रामसनेही की तरफ़ देखा, और तब जाते हुए हाकिम की तरफ़। ज़ोर से चिल्लाकर वह हाकिम को पुकारना चाहता था, या न-जाने क्या? पर नूरुद्दीन ने उसके मुँह पर हाथ रख दिया, और कहा—"चलो।"

रामसनेही सिर झुकाए सिपाहियों के बीच में होकर चला जा रहा था। सिंभू ने उसे देखा, और कहा—"हाय !!"

रामसनेही ने सिर उठाकर उस तरफ़ देखा। देखा—नूरुद्दीन और दो-तीन आदमी सिंभू के हाथ पकड़े दूसरी तरफ़ लिए जा रहे हैं, और सिंभू बार-बार उसको देखता है, और उसकी तरफ़ आने की चेष्टा करता है !!

रामसनेही विक्षिप्त हो चुका था। न वह सिंभू के चेहरे पर उसके मनोभाव समझ सका, न उसकी 'हाय !' का मतलब।

एक सिपाही ने दूसरे से कहा—"हथकड़ी मज़बूत रक्खो।"

(१०)

शाम के वक्त भगवानदेई अपने घर में बैठी एक दूसरी स्त्री से बात कर रही थी। बोली—"क्या ज्यादा बीमार है ?"

"हाँ, बुखार में लाल हो रहा है। जरा-सा बच्चा तिस पर मुसीबत का पहाड़, बेहोश पड़ा है। बच्चा है तो क्या हुआ। समझता तो सब कुछ है।"

"तो कुछ दवा-दारू भी दी ?"

"बीबी, करे क्या बेचारी ? स्त्री की जात, राम के घर का कोप। अपने को सँभाले, या बच्चे को ? बेचारी चुप-चुप रोती है, और बच्चे को गोद में लिए बैठी है। वह तो यह कहो, इसका सुभाव ही सदा से ऐसा है। नहीं और कोई होती, तो अब तक जान खो दिए होती। भला जिसका मरद फाँसी चढ़ने को तैयार हो, जिसका घर-बार चोरों ने लूट

लिया हो, उसे चुप्पी साधे बैठना सुहा सकता है ?......पर किया क्या जाय, जैसी पड़ती है, सब सहनी पड़ती है ।"

"......हाँ, बीबी, जैसी पड़ती है, सब सहनी पड़ती है ।"

....

"पर सिंभू को ऐसा बैर निकालना वाजिब तो था नहीं । आखिर को तो भाई था ।"

"क्या बताऊँ ? उस दिन के बाद मुझे तो समझाने तक का मौक़ा नहीं मिला । काम तो सचमुच खराब हुआ । क्या कहूँ......"

"क्या कहा ? मौक़ा नहीं मिला ? सो कैसे ?"

"अरी बीबी, असल में सारी कर्तूत तो इस नूरन तेली की है । पहले इसे चंग पर चढ़ाया । 'तेरी बहू को रामसनेही ने मूठ छुड़वाकर मरवा डाला ।' ......तुम जानो, स्त्री के मरने का गम, आ गया बहकावे में ! असल में कुतबी के साथ कई आदमी गए तो रामसनेही को मारने को ही

थे, पर उल्टे कुतबी को अपनी जान खोनी पड़ी। नूरन के सिखावे में पड़कर ही सिंभू ने ऐसी गवाही दी है।......"

"अरे! सचमुच?"

"हाँ, मेरा तो खयाल ऐसा ही है।...बस इसके बाद नूरन ने सिंभू को अकेला छोड़ा ही नहीं, कभी खुद उसके साथ रहता, कभी उसे अपने घर में घुसाए रहता। क्या करूँ, मुझे तो मौका ही नहीं मिला।"

'पर यह तो बड़ा जुलम हुआ। एक बेकसूर आदमी फाँसी पड़ेगा!..... अँगरेजी सरकार के राज में ऐसा......!"

"देखो, अभी तो सजा मिली नहीं है! शायद बच जाय।"

"हाँ, दुर्गा ने वकील तो बड़ा जबरदस्त करा है। सुना है, हाकिम की जीभ पकड़ता है!"

भगवानदेई ने यह बात अध सुनी करके कहा—"क्या करूँ तो मुझे तो मौका ही नहीं मिला; नहीं मैं

तो जरूर समझा लेती।......कल साँझ को कचहरी गया, तब लौंडे को छोड़ने आया था। मैंने रोककर कुछ कहना भी चाहा, तो बाहर से नूरन ने 'जल्दी-जल्दी की पुकार मचाई। क्या करूँ, है तो बड़े जुलम की बात। बेचारी दुर्गा का सर्वस लुट जायगा!"

"हाँ, बड़े जुलम को बात है। बिचारी लुट जायगी।"

....

"तो लौंडा बहुत बीमार है?"

"बहुत ज्यादा! क्या कहूँ—बिचारी पर बिपदा के बादल उमड़ पड़े हैं।"

इतने में भीतर कोठे में से बच्चे के रोने की आवाज आई। उस स्त्री ने पूछा—"यह कौन रोया?"

भगवानदेई ने उठते हुए कहा—"वही सिंभू का लौंडा है, मनोहर। मैंने कहा नहीं, कचहरी जाता है, तब मुझे सौंप जाता है।"

भगवानदेई यह कहकर कोठे में चली गई। दो

मिनट बाद अर्द्ध-निद्रित बालक मनोहर को गोद में उठाए हुए बाहर आई, और बच्चे की कमर पर हाथ फेरते हुए बोली—"इसे तो बुखार-सा चढ़ आया !"

"बुखार चढ़ आया !" उस स्त्री ने बालक का शरीर छूते हुए कहा—"हाँ, बदन गरम हो गया है।"

"अब क्या करूँ ?" भगवानदेई ने कुछ चिंतित होकर कहा—"सिंभू आएगा, तो क्या कहेगा। अब क्या करूँ ?"

"करना क्या है, सब अच्छा हो जायगा। रामू मोदी से दवाई लाकर खिला दे।"

यह कहते-कहते उस स्त्री ने वहाँ ठहरना व्यर्थ समझकर प्रस्थान किया।

भगवानदेई मनोहर को गोद में लिए खड़ी थी। क्या करूँ ? यही सोच रही थी। इतने में धम-धम करके किसी के दौड़ते आने की आवाज़ आई। दूसरे ही क्षण उसने देखा, सिंभू हाँपता हुआ, बदहवास उसके सामने आ खड़ा हुआ, और बे-तहाशा बोला—"मनोहर !"

इतना कहते-कहते उसने भगवानदेई की गोद में मनोहर को देख लिया। भगवानदेई ने बच्चे को उसे दे दिया, और कहा—"इसे तो बुखार चढ़ रहा है।"

सिंभू आर्तनाद कर उठा, और बच्चे को गोद में कसकर चिपकाते हुए बोला—"हाय ! मेरा बच्चा !!"

और वह पलक-झपकते कूदकर घर के बाहर हो गया !

भगवानदेई इस अनहोनी घटना का अर्थ न समझ सकी, थोड़ी देर वज्राहत-सी खड़ी रही, फिर घर का दर्वाजा बंदकर, सिंभू के घर की तरफ़ चली।

दर्वाज़ा भीतर से बंद था। उसने धक्का दिया, साँकल खड़काई, आवाज़ें दीं, पर सब निष्फल ! कोई उत्तर न मिला।

हारकर बेचारी लौट आई।

× × ×

सिंभू बेटे को गोद में छिपाए कोठे में घुस गया। पहले कुछ देर कोठे में इधर-से-उधर घूमता रहा, फिर चारपाई पर लेट गया, और कपड़ा ओढ़ लिया।

बच्चे का शरीर बुखार से तप रहा था।

सिंभू बड़बड़ाने लगा—"हे परमात्मा, मैंने महा-पाप किया है। मैंने झूठी गवाही देकर भाई को फाँसी दिलवाई है, तू इसके बदले मुझे सड़ा-सड़ाकर मार; मेरे बच्चे से इसका बदला न ले। हे गंगा माता, मैंने तुम्हारी साक्षी देकर बेटे की क़सम खाई है, मैंने बड़ा अपराध किया है। हे माता! अपराध मैंने किया है, मुझे दंड दो, यह बच्चा निरपराध है, इसने संसार में आकर अभी कुछ नहीं देखा है, इसे बख़्श दो।"

सिंभू बहुत देर तक निरंतर "गंगा माता, क्षमा करो! गंगा माता, क्षमा करो!" की टेर लगाता रहा।

बच्चे के शरीर का ताप घटा नहीं; बढ़ता ही गया।

गंगा-नदी से निकला हुआ एक नाला मधुपुर के पास से बहता था। समस्त ग्रामवासी इस नाले को गंगाजी के समान ही अभिनंदनीय और इसके जल

को गंगा-जल के समान पूज्य मानते थे। जब आधी रात बीत गई, और सिंभू ने मनोहर के ताप में कमी न देखी, तो वह उन्मादियों की-सी अवस्था में उठ खड़ा हुआ। बच्चा उसकी गोद में था, और वह धीरे-धीरे इस नाले की तरफ़ बढ़ा।

अँधेरी रात थी। सब चीज़ों पर स्याही पुती हुई थी। सारा गाँव निस्तब्ध था। गाँव के बाहर गीदड़ बुरी तरह चिल्ला रहे थे। और कहीं पत्ता तक नहीं खड़कता था।.........डरावना समय था!

पर सिंभू निर्भय, निर्बाध, निश्चिन्त नाले की ओर जा रहा था।

रस्ते-भर उसके मुँह से गंगा माता की अस्पष्ट टेर निकलती रही, और कोई भाव, और चिंता, उसके मन में इस समय नहीं थी। गंगा माता की प्रार्थना में उसका मन पूर्ण एकाग्र हो उठा था।

आखिर नाला आया। सिंभू किनारे पर खड़ा हो गया, और ज़ोर से बोलने लगा—"हे गंगा माता, मैंने तुझे साक्षी रखकर झूठी क़सम खाई है; मैंने

बड़ा पाप किया है । हे माता, मैं इसका परासचित (प्रायश्चित्त) करूँगा। अपराध मैंने किया है। माता, इस अबोध बालक को तू बखस दे।"

सिंभू थोड़ी देर चुप रहा, फिर कहने लगा—"हे माता, मैं तुझसे इस बालक को भीख माँगता हूँ। यह तेरे द्वार पर मौजूद है, चाहे ले, चाहे छोड़ दे। माता, जब तक इसे बखस न देगी, यहाँ से नहीं हटूँगा। न बखसेगी, तो इसके साथ ही मैं भी तेरे जल में डूबकर प्राण दे दूँगा।"

सिंभू के स्वर में योगियों की-सी दृढ़ता थी। आध घंटा वह पत्थर की मूर्ति का तरह निश्चल खड़ा रहा। मुँह से "हे गंगा माता" की अस्फुट ध्वनि निकल रही थी, और सच्ची लगन के साथ वह अपनी तपस्या में निमग्न था।

ठंडी हवा चल रही थी। बच्चा मनोहर जाग उठा, और अर्द्ध-निद्रित अवस्था में अभ्यासानुसार बोल उठा—"काका, दूध!"

सिंभू एक फुट ऊँचा उछल गया। कुछ क्षण तक

आश्चर्य-चकित-सा खड़ा रहा, फिर खूब जोर से चिल्ला उठा—"बोलो गंगा माता की जय !"

हवा ज़ोर से चलने लगी। पेड़ों की पत्तियों ने हवा के सुर में सुर मिलाकर कहा—"गंगा माता की जय !"

जंगल के गीदड़ अपनी भाषा में चिल्लाए—"गंगा माता की जय !"

नाले का पानी गौरव से ऐंठता, बल खाता, लहर लेता बहा जाता था।

बच्चे को गोद में चिपकाए सिंभू घर दौड़ा।

× × ×

एक घर में से किसी स्त्री के रोने की आवाज आ रही थी। सिंभू रुक गया। रुककर पहचाना। घर रामसनेही का था, और आवाज़ दुर्गा की थी !

सिंभू के कलेजे में मुक्का-सा लगा ! धीरे-धीरे आगे बढ़कर उसने दर्वाजे पर हाथ रक्खा। दर्वाजा भिड़का हुआ था; हाथ लगाते ही खुल गया।

बालक-सहित सिंभू भीतर घुसा।

आज मुद्दत-बाद सिंभू इस घर में आया था। तब इस घर को अपना समझकर आया था—रामसनेही का और अपना स्नेह गाढ़ा करने आया था—उस समय यह घर उसे जितना प्रिय, जितना परिचित जान पड़ा था, इस समय उतना ही डरावना और उतना ही अपरिचित दिखाई पड़ रहा था!

चौक में पहुँचकर उसने सुना, भीतर की कोठरी में दुर्गा धीरे-धीरे विलाप कर रही है।

सिंभू चुपचाप कोठरी के द्वार पर जा खड़ा हुआ। कोठरी में सरसों के तेल का दीपक टिमटिमा रहा था। एक चटाई पर दुर्गा बैठी रो रही थी, और सामने पृथ्वी पर उसके बालक की मृत देह पड़ी थी!!

सिंभू सिहर उठा!

दुर्गा रोती-रोती कह रही थी—"हाय बेटा, तुम भी मुझे छोड़कर चल बसे! हे भगवान्, पूर्वजन्म के किन पापों का यह दंड दे रहे हो? सुहाग फाँसी ने लूटा, घर-बार चोरों ने लूटा; एक बालक बचा था, इसे भी लुटवा दिया!! हे ईश्वर, इस

जनम में तो मैंने अपने जानते कोई पाप किया नहीं, पहले जनम में भी ऐसा क्या पाप कमाया !......हे भगवान्, सब कुछ तुमने छीना—अब मुझे ही क्यों जिंदा छोड़ रक्खा है ? मेरे प्राण भी......"

सिंभू अधिक न सुन सका। धीरे से किवाड़ ठेले, और भीतर घुसकर पुकारा—"दुर्गा !"

दुर्गा ने भीगे हुए नेत्र ऊपर उठाए, और सिंभू को पहचानकर मुँह ढक लिया।

सिंभू ने कहा—"दुर्गा।"

दुर्गा ने तब भी कोई उत्तर नहीं दिया।

सिंभू फिर बोला—"दुर्गा, बच्चा बे-दम है क्या ?"

दुर्गा ने बच्चे के शरीर की तरफ़ उँगली से संकेत किया।

सिंभू बैठ गया, और बच्चे के शरीर पर हाथ रक्खा।

शरीर ठंडा पड़ गया था, और निर्जीव हो चुका था।

सिंभू खड़ा हो गया, और अस्फुट स्वर में बोला—"खतम है !"